B.A. Political Science

Semester –III

Paper Code –

INDIAN GOVERNMENT & POLITICS – I

भारतीय सरकार और राजनीति – I

Semester-III

Syllab- Book Mapping Table

भारतीय सरकार और राजनीति–1

इकाई संग्रह	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
इकाई–1	भारतीय संविधान का निर्माण	4–72
	भारतीय संविधान का निर्माण भारतीय संविधान के स्त्रोत भारतीय संविधान की विशेषताएँ संविधान की प्रस्तावना मौलिक अधिकार मौलिक कर्तव्य राज्य–नीति के निर्देशक तत्व	
इकाई–2	केन्द्र राज्य संबंध	73–167
	केन्द्र राज्य संबंध उच्चतम न्यायालय तथा न्यायिक पुतरावलोकन राजनैतिक दलः राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दल	
इकाई–3	लघु व दीर्घ उत्तरीय प्रश्न भारतीय संविधान का निर्माण भारतीय संविधान के स्त्रोत भारतीय संविधान की विशेषताएँ संविधान की प्रस्तावना मौलिक अधिकार मौलिक कर्तव्य राज्य–नीति के निर्देशक तत्व केन्द्र राज्य संबंध उच्चतम न्यायालय तथा न्यायिक पुतरावलोकन राजनैतिक दलः राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दल	168–176

इकाई –1

भारतीय संविधान का निर्माण

1.0 इकाई का परिचय

यह पाठ्यक्रम भारत में संविधानिक सरकार और लोकतंत्र के विभिन्न पहलुओं के बारे में आपको जानकारी प्रदान करता है। यह संविधान में उल्लेखित लोकतांत्रिक मूल्यों के बारें में आपको परिचित कराता है तथा नागरिकों के बीच संबंधो, राज्य की विभिन्न इकाईयों के बीच संबंधों जैसे केन्द्र सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय सरकार और राज्य के विभिन्न अंगों के बारें में जानकारी प्रदान करता है। जैसा कि आप इस पाठ्यक्रम के विभिन्न अध्यायों में पढ़ेंगे, भारतीय संविधान का निर्माण स्त्रोत, विशेषताएँ, संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार इत्यादि। प्रत्येक अध्याय का परिचय दिया गया है। अध्याय के अंत में अभ्यास हेतू प्रश्न दिए गए हैं। प्रत्येक अध्याय को पढ़ने के बाद आप इन प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास कर सकते हैं। पाठ्यक्रम के अंत में कुछ महत्वपूर्ण संदर्भ सूची भी दी गई है। आपको सलाह दी जाती है कि आप इसका इस्तेमाल करें।

1.1 इकाई का उद्देश्य

- सवैधानिक स्थानाओं के बारें में जानना।
- संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि को समझना।
- संविधान के अंतर्गत प्रस्तावना तथा मूल अधिकारों को जानना।
- केन्द्र– राज्य संबंधों के बारें में जानना।

1.2 भारतीय संविधान का निर्माण

1.2.1 परिचय

भारत के संविधान को 26 नवम्बर 1949 को अपनाया गया। अर्थात्, इस दिन संविधान सभा ने इसे अंतरिम रूप दिया। लेकिन यह दो महीने बाद यानि 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ। हालांकि संविधान के कुछ प्रावधान जैसे नागरिकता चुनाव, अस्थायी संसद एवं अन्य संबंधित प्रावधान 26 नवंबर 1949 को ही लागू हो गए थे। दो महीने बाद अर्थात 26 जनवरी 1950 को इसे इसलिए लागू किया गया था, क्योंकि इसी दिन यानि 26 जनवरी 1930 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारत की आजादी का उत्सव मनाया था। यह अध्याय भारतीय संविधान की सरंचना के महत्वपूर्ण बिन्दुओं से संबंधित है।

1.2.2 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप यह समझेंगे

- संविधान सभा के गठन के पूर्व संविधान निर्माण के चरण।
- संविधान सभा के प्रतिनिधित्व का स्वरूप।
- संविधान सभा की समस्याएं व समाधान।

1.2.3 भारतीय संविधान के विकास की प्रक्रिया

भारतीय संविधान निर्माण की माँग सर्वप्रथम कांग्रेस ने 1934 में की जिसे शिमला सम्मेलन 1945 में पुनः दोहराया गया। आखिरकार द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अंग्रेजी सरकार ने इस माँग को स्वीकार कर लिया और संसदीय डेलीगेशन की सिफारिश में कैबिनेट मिशन को भारत भेजा गया।

कैबिनेट मिशन 24 मार्च 1946 को दिल्ली पहुँचा। लार्ड पैथिक लारेंस सर स्टेफर्ड क्रिप्स और ए. बी. एलेक्जैण्डर मिशन के सदस्य थे। मिशन ने भारत को विभिन्न नेताओं से बातचीत शुरू की और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को विश्वास दिलाया कि वार्तालाप के बाद ही किसी योजना को अन्तिम रूप दिया जाएगा। परन्तु कांग्रेस अटूट भारत चाहती थी जबकि मुस्लिम लीग पाकिस्तान बनाने का मन बना चुकी थी। इसलिए मिशन ने अपनी ही ओर से एक योजना बनाई जिसके तहत राज्यों का संघ, संघ तथा राज्यों में शक्तियों का विभाजन आदि शामिल थे।

इस योजना के तहत भारत को तीन अनुभागों में बांटा गया :

अनुभाग ए			
प्रान्त	सामान्य	मुस्लिम	कुल
मद्रास	45	4	49
बम्बई	19	2	21
उत्तर प्रदेश	47	8	55
बिहार	31	5	36

(केंद्रीय प्रान्त) सी. पी.	16	1	17	
उड़ीसा	9	0	9	
कुल	167	20	187	
		अनुभाग–बी		
प्रान्त	सामान्य	सिक्ख	मुस्लिम	कुल
पंजाब	8	4	16	28
उत्तरी–पश्चिमी सीमा प्रान्त	0	0	3	3
सिंध	10	3	4	17
कुल	9	4	22	35
		अनुभाग–सी		
प्रान्त	सामान्य	मुस्लिम	कुल	
बंगाल	27	33	60	
आसाम	7	3	10	
कुल	34	36	70	

अनुभाग ए. में शामिल प्रान्तों में हिन्दू बहुमत, बी. में मुस्लिम बहुमत तथा सी. में पुनः हिन्दू बहूमत था।

इस योजना के अतिरिक्त मिशन ने संविधान निर्माण के लिए संविधान–सभा का प्रस्ताव भी रखा। इसके लिएः–

1. प्रत्येक प्रान्त को उसकी जनसंख्या के आधार पर संविधान–सभा में स्थान दिया जाए। लगभग 10 लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि निर्वाचित हो।
2. संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष हो। सदस्यों का चुनाव प्रान्तीय विधानसभाओं द्वारा किया जाए।
3. प्रत्येक पान्त के स्थान पर उस प्रान्त की विभिन्न जातियों की जनसंख्या के आधार पर दिए जाए।
4. केवल तीन मतदाता संघ बनाए जाए :

   (अ) साधारण

   (ब) मुस्लिम

   (स) सिक्ख (केवल पंजाब में)
5. संविधान का निर्माण होने तक देश का शासन अन्तरिम सरकार द्वारा चलाया जाए।

इस प्रकार कैबिनेट मिशन की प्रस्तावित योजना के अनुरूप जुलाई 1946 में संविधान सभा का चुनाव हुआ जिसमें मुख्य मुकाबला कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग में था। कुल 232 सीटों में से 212 सीटें कांग्रेस और इसके समर्थकों ने जीती। मुस्लिम लीग को केवल 73 सीटे प्राप्त हुई।

संविधान सभा की दल–गत रूप सरंचना इस प्रकार थी :

दल	हिन्दू	टनुसूचित जाति	मुस्लिम	एंग्लो इंडियन	फारसी	पिछड़े कबीले	ईसाई	कुल
कांग्रेस	156	29	4	3	3	4	6	205
मुस्लिम			73					73
यूनियनिस्ट	1	1	1					3
कृषक प्रजा			1					1
साहिद जीरगा			1					1
अनुसूचित जाति		1						1
संघ								
सिक्ख (रिक्त					2		2	4
साम्यवादी	1							1
जमींदार	3							3
वाणिज्य एवं उधोग	2							2
कुल	163	31	80	3	6	6	292+4 सिक्ख	296

स्त्रोत : जे. आर. सिवाच : भारतीय सरकार एवं राजनीति

संविधान सभा में कांग्रेस के आधिपत्य को देखते हुए जिन्हा ने 29 जुलाई 1946 को अपनी स्वीकृति वापिस ले ली। परन्तु इसके बहिष्कार के बाद भी संविधान सभा ने अपना कार्य आरम्भ किया।

पहली सभा

संविधान सभा का पहला सम्मेलन 9 सितम्बर 1946 को हुआ जिसमें कुल 296 सदस्यों ने भाग लिया। सचिदानन्द सिन्हा को सभा का अस्थाई प्रधान चुना गया 13 सितम्बर 1946 को संविधान सभा ने एक '' उद्देश्य प्रस्ताव'' पारित किया जिसमें मुख्य बातें थी :–

a) भारत में स्वतंत्र एवं सार्वभौम गणराज्य स्थापित किया गया।

b) सभी व्यक्तियों को राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समानता दी जाए।

c) सभी व्यक्तियों को कोई भी व्यवसाय अपनाने, भाषण एवं लिखने, किसी भी धर्म एवं मत को अपनाने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

अल्पसंख्यक, अनुसूचित जाति एवं पिछड़े वर्गों के हितो की सुरक्षा के लिए आवश्यक प्रयत्न होना चाहिए।

1.2.4 समितियों की नियुक्ति

उद्देश्य प्रस्ताव को पारित करने के बाद संविधान सभा ने कुछ समितियाँ नियुक्त की ताकि वे संविधान के विभिन्न पहलुओं पर गहन विचार करके अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

मसौदा समिति की नियुक्ति

विभिन्न समितियों की रिपोर्ट के आधार पर संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए 29 अगस्त, 1947 को संविधान सभा ने बी. आर. अम्बेडकर की अध्यक्षता में सात सदस्यों की मसौदा समिति का गठन किया। इस समिति ने 21 फरवरी 1948 को संविधान का पहला मसौदा प्रस्तुत किया जिसमें 243 धाराएँ और 13 सूचियाँ शामिल थी। इसे जनता की राय जानने के लिए भेजा गया। जब इस मसौदे की अत्यधिक आलोचना हुई तो मसौदा समिति ने दूसरा मसौदा तैयार किया जिसमें 315 धाराएँ और नौ सूचियाँ थी। इसे संविधान सभा के सामने 21 फरवरी 1948 को रखा गया। अन्तिम प्रारूप में 395 धाराएँ और 8 सूचिया रखी गई कुल मिलाकर संविधान सभा सत्र बुलाए जिनमें 167 दिन लगे। इस प्रकार संविधान निर्माण में 2 वर्ष ग्यारह महीने और अठारह दिन लगे।

संविधान सभा की कार्य प्रणाली

संविधान सभा ने अपना कार्य 20 से भी ज्यादा समितियों के माध्यम से किया। इनमें से ज्यादातर स्थाई समितियाँ थी। परन्तु मसौदा समिति ने संविधान निर्माण के अन्तिम क्षणो तक कार्य किया। इस समिति में ज्यादातर वकील लोग शामिल थे। संविधान सभा में विधानपालिका के समरूप कार्य प्रक्रिया अपनाई गई। सवैंधानिक प्रावधानों को एक बिल के भाग ही माना गया और तीन वाचन एवं समितियों के माध्यम से पारित किया गया। किन्तु वास्तव में निर्णय, निर्माण की शक्तियाँ कांग्रेस नेताओं में निहित थी। कांग्रेस–कार्य– समिति द्वारा ही मसौदा समिति के सभी अहम–निर्णयों को हरी झण्डी दिखाई गई।

प्रजातान्त्रिक कार्य प्रणाली

संविधान सभा ने प्रजातान्त्रिक तरीके से अपना कार्य किया। इसके सदस्यों द्वारा 7635 संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए जिनमें से 2473 पर सभा ने वाद–विवाद किया गया। इसलिए इसने 2 वर्ष 11 महीनों और 18 दिन का समय लिया जबकि अमेरिका का संविधान 4 महीनें में बनकर तैयार हो गया था। कनाड़ा में 2 वर्ष का समय लगा। वहाँ पर अधिक संशोधन प्रस्तावों की समस्या नहीं थी। भारतीय संविधान सभा में सदस्यों की अधिक संख्या और लम्बी एवं खुली बहस के परिणामस्वरूप संविधान बनाने में अधिक समय लगा। इसके निर्माण पर 64 मिलियन रूपये की लागत आई।

1.2.5 सर्वसम्मति का सिद्धांत

संविधान सभा का दृष्टिकोण सर्वसम्मति के सिद्धांत पर आधारित था। सर्वसम्मति का अर्थ है जो भी निर्णय लिए जायें वे सर्वसम्मति से या लगभग सर्वसम्मति से लिए जाएँ। ग्रेनविल आस्टिन का कहना है, '' सर्वसम्मति इस तथ्य को मान्यता देती है कि बहुमत का शासन यदि नैतिक दृष्टि से अन्यायपूर्ण नही है तो भी राजनीतिक विवादों में राजनीतिक दृष्टि से ठीक नहीं है ; क्योंकि उनमें मानवीय भावनाएँ पड़ी होती हैं।'' (Consensus is the recognition of the fact that majority rule if not morally unjust would be politically unwise in political conflicts in which human emotions are very deeply involved.) के. जी. मशरूवाला (K.G. Mashruwala) का मत था कि '' 49 के विरूद्ध 51 के बहुमत से लिया गया निर्णय एक उपयुक्त निर्णय नहीं माना जाएगा।'' पं. जवाहरलाल

नेहरू ने संविधान सभा के सदस्यों से कहा था, '' आप जल्दबाजी न करें और जहाँ तक सम्भव हो एक राय से निर्णय करें।'' इसी भावना से प्रेरित होकर संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद बहस को स्थगित करके समझौते के लिए समय दिया करते थे, ताकि किसी पर जबरदस्ती कोई निर्णय न लादा जाए। संविधान निर्माता अच्छी तरह से समझते थे कि वहीं संविधान टिकाऊ हो सकता है जो सर्वसम्मति या लगभग सर्वसम्मति पर आधारित हो।

सर्वसम्मति के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न तरीके अपनाए गए। प्रथम, कांग्रेस विधानमण्डल दल की बैठकों में, संविधान दल की बैठकों में संविधान की प्रत्येक धारा पर खुलकर विचार होता था। इन बैठकों में डॉ. अम्बेडकर, अय्यर और आयंगर जैसे गैर–कांग्रेसी भी सम्मलित होते थे। द्वितीय, संविधान निर्माण से संबंधित सभी महत्वपूर्ण समितियों में विभिन्न समुदायों, वर्गों तथा हितों को प्रतिनिधित्व दिया गया था। संविधान सभा की सबसे महत्वपूर्ण समिति प्रारूप समिति (Draft Committee) थी और इसके 9 सदस्यों में से केवल एक सदस्य श्री मुन्शी कांग्रेसी थे। इस समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर थे जो कांग्रेस के कटु आलोचक थे। संविधान सभा की समिति में पहले विचार होता था और सर्वसम्मति से निर्णय लेने का प्रयास किया जाता था ताकि वह सदस्य यह न समझे कि बहुमत ने उसके सुझाव का निरादर किया। तृतीय, संविधान सभा में शक्ति के केन्द्र पं. नेहरू और पटेल अपने मतभेदों को दूर कर लेते थे तो संविधान सभा में सर्वसम्मति से निर्णय लेना आसान हो जाता था। पं. नेहरू और पटेल अपने मतभेदों को आपसी बातचीत से दूर करने का प्रयास करते थे। चौथे, सर्वसम्मति से निर्णय लेने के लिए कई बार कांग्रेस पार्टी व्हिप (whips) जारी किया करती थी। जब व्हिप जारी किया जाता था तब मतों पर नियन्त्रण होता था। आस्टिन का कहना है कि, '' संविधान की भाषा संबंधी धाराओं पर सर्वसम्मति बनाने के लिए व्हिप का सहारा लेना पड़ा था!''

एम. वी. पायली (M.V. Pylee) ने लिखा है, '' संविधान सभा में वाद–विवाद को पूरा प्रोत्साहन मिला, आलोचना के प्रति सहनशीलता प्रकट की गई, लम्बे वाद–विवाद के प्रति असन्तोष नहीं दिखाया गया, अपने विचार दूसरों पर लादने एवं शीघ्रता से कार्य समाप्त करने का प्रयास नहीं किया। यह एक पूर्ण लोकतान्त्रिक प्रक्रिया थी, जिस पर भारतीय लोग गर्व कर सकते हैं।'' ग्रेनविल आस्टिन के अनुसार तीन तत्त्वों ने सर्वसम्मति निर्णय लेने में सहायता प्रदान की,– एकता का वातावरण, आदर्शवाद का वातावरण और राष्ट्रीय उद्देश्य का वातावरण।

संविधान सभा में सर्वसम्मति से निर्णय लिए जाने के मुख्य उदाहरण हैं– संघीय व्यवस्था, भाषायी प्रावधान और अल्पसंख्यकों से संबंधित व्यवस्थाएँ आदि।

1. संघीय व्यवस्था : संविधान सभा ने भारत की संघीय व्यवस्था पर फरवरी, 1974 में विचार प्रारम्भ किया और नवम्बर, के प्रतिनिधियों और प्रान्तीय सरकारों के प्रतिनिधिों को सन्तुष्ट किया जा सके। ऐसी व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया गया कि न तो कोई प्रान्त संघ से अलग हो सके और न ही संघ को बनाएँ रखने के लिए दमन शक्ति का प्रयोग करना पड़े। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ' संघीय शक्ति समिति' (Union Powers Committee) तथा प्रान्तीय संविधान समिति में प्रान्तों के महत्वपूर्ण नेताओं (मिन्तर, वी. टी. कृष्णामाचारी और रामास्वामी मुदालियर) को सम्मलित किया गया था। संघीय प्रारूप समिति, संघीय शक्ति समिति, संघीय कैबिनेट के सदस्य, प्रान्तीय मुख्यमंत्रियों तथा शिक्षा और वित्तमन्त्रियों के बीच बैठकें होती रहती थी। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि संघीय व्यवस्था पर सर्वसम्मति होने का महत्वपूर्ण कारण भारत का विभाजन था। भारत के विभाजन के बाद शक्तिशाली केन्द्र के लिए लगभग सर्वसम्मति थी और इसलिए संघीय व्यवस्था के साथ शक्तिशाली केन्द्र की व्यवस्था सर्वसम्मति से की जा सकी।

2. भाषा से संबंधित प्रावधान : भाषा से संबंधित प्रावधान भी सर्वसम्मति से निर्णय के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। भाषा की समस्या का ऐसा हल ढूँढने का प्रयास किया गया, जिसे सभी सामान्य रूप से स्वीकार कर ले और यह प्रयास तीन वर्षों तक किया गया। संविधान सभा की अन्तिम बैठक के प्रारम्भ में सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि वह भाषायी प्रावधानों को मतदान के लिए नहीं रखेंगे क्योंकि यदि कोई निर्णय समस्त देश को स्वीकार न हुआ तो उसको लागू करना कठिन होगा। लम्बे वाद–विवाद के बाद भाषा की समस्या पर निर्णय लिए गए।

3. अल्प संख्यकों से संबंधित प्रावधान : अल्पसख्यंकों की समस्याओं को हल करने के लिए लम्बे वाद–विवाद के बाद सर्वसम्मति से निर्णय लिए।

4. प्रस्तावना : संविधान सभा ने प्रस्तावना और उद्देश्य–प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार किया।

5. स्ंसद से संबंधित प्रावधान : संसद के संगठन, कार्यों एवं शक्तियों पर खुले रूप से विचार किया गया और अन्त में सर्वसम्मति से निर्णय लिए गए।

6. समायोजन का सिद्धांत (Principle of Accomodation) : आस्टिन के अनुसार भारत के संविधान निर्माण में मौलिक योगदान समायोजन का सिद्धांत है। ग्रेनविल आस्टिन ने समायोजन की परिभाषा इस प्रकार दी है : ' समायोजन दो विरोधी धारणाओं में समझौता व सामंजस्य करने की योग्यता और तत्त्वों को परिवर्तित किए बिना उसको संचालित करना है, समायोजन ऐसे दो सिद्धांतों का मेल है। जो गैर– भारतीयों को विशेष रूप से यूरोपीय और अमेरीकी पर्यवेक्षकों को विरोधी दिखाई देते हैं।''

(Accomodation is the ability to reconcile, to harmonise and to make work without changing their content, apparently incompatible concepts, at least concepts that appear conflicting to the non-indian and specially to European or American observer.) वास्तव में संविधान सभा के सदस्यों ने व्यावहारिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए समायोजन के सिद्धांतों को अपनाया। समायोजन के सिद्धांत के कुछ प्रमुख उदाहरण इस प्रकार है :

1. संघात्मक और एकात्मक व्यवस्था के बीच समन्वय : साधारणतया संघात्मक और एकात्मक व्यवस्था को परस्पर विरोधी माना जाता है। एक अमरीकी या इंग्लिश संविधानवेता यह कहेगा कि या तो एकात्मक शासन प्रणाली को अपनाया जा सकता है या फिर संघात्मक शासन प्रणाली को। इंगलैंड में एकात्मक शासन प्रणाली पाई जाती है, जबकि अमरीका में संघात्मक शासन प्रणाली पाई जाती है। परन्तु भारतीय संविधान संघात्मक भी है और एकात्मक भी। हमारे संविधान निर्माताओं ने संघात्मक व्यवस्था के साथ–साथ केन्द्र को इतना शक्तिशाली बनाया है, ताकि किसी भी स्थिति का सामना किया जा सके।

2. गणतंत्रीय व्यवस्था के साथ राष्ट्रमण्डल की सदस्यता : 1947 ई. तक यही समझा जाता था कि गणतन्त्रीय राज्य राष्ट्रमण्डल का सदस्य नहीं बन सकता, क्योंकि गणतन्त्रीय व्यवस्था और राष्ट्रमण्डल की सदस्यता को परस्पर विरोधी माना जाता था। भारतीय संविधान सभा ने 1946 ई. में निर्णय लिया कि भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य होगा। भारत के कहने पर ही ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की सदस्यता भी स्वीकार की। संविधान सभा में, बी. एन. राव ने कहा था, '' राष्ट्रमण्डल की धारणा का स्पष्टतया विकास होता जा रहा है और यह अब इस स्तर पर पहुँच चुका है जिसमें गणतन्त्रात्मक संविधान वाले राज्य भी अपना स्थान पा सकते हैं।''

3. केन्द्रीकरण और पंचायती राज के बीच समन्वयः संविधान सभा के कुछ सदस्य पंचायती राज के समर्थक थे, जबकि कुछ शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में थे। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद तथा कुछ अन्य पंचायती व्यवस्था को अपनाने के प्रबल समर्थक थे। उनका मत था कि व्यस्क मताधिकार और प्रत्यक्ष चुनाव के आधार पर ग्राम पंचायती व्यवस्था को अपनाने के प्रबल समर्थक थे। उनका मत था कि व्यस्क मताधिकार और प्रत्यक्ष चुनाव के आधार पर ग्राम पंचायतों और नगरपालिका बोर्डों की स्थापना की जाए। पंचायते और बोर्ड अपने प्रतिनिधि चुनकर उच्चतम संस्थाओं में भेजें और इस प्रकार संसद का निर्माण किया जाए। परन्तु दूसरी ओर पं. जवाहर लाल नेहरू तथा संविधान सभा के अधिकांश सदस्य शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के पक्ष में थे। अन्त में समायोजन के सिद्धांत का अनुसरण करते हुए शक्तिशाली केन्द्र और पंचायती व्यवस्था के बीच समन्वय किया गया। संघ तथा प्रान्तीय सरकारों के सम्बन्ध में केन्द्रीकरण के सिद्धांत को स्वीकार किया गया और प्रत्यक्ष निर्वाचन व्यवस्था का कार्य प्रान्तीय व्यवस्थापालिकाओं के क्षेत्राधिकार में रखा गया तथा दूसरी ओर राज्यनीति के निदेशक सिद्धांतों में पंचायती राज की स्थापना की बात कही गई।

4. मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित प्रावधानः संविधान सभा में मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण पाये जाते थे। एक दृष्टिकोण यह था कि जितने अधिक अधिकारों का समावेश संविधान में हो सके, किया जाना चाहिए। इन अधिकारों को सीधे न्यायालयों द्वारा लागू किया जाए। परंतु दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार कुछ मौलिक अधिकारों का ही अर्थात मुख्य अधिकारों का ही संविधान में समावेश किया जाना चाहिए। इन दोनों दृष्टिकोणों पर बहुत वाद–विवाद हुआ, अन्त में समायोजन के सिद्धांत का अनुसरण करते हुए बीच का मार्ग खोज लिया गया। मुआवजे की व्यवस्था में भी बहुत वाद–विवाद हुआ और इस समस्या का भी समायोजन द्वारा हल कर लिया गया।

5. राष्ट्रपति के निर्वाचन के सम्बन्ध मेंः संविधान सभा में राष्ट्रपति के चुनाव पर बड़ा विवाद हुआ। संविधान सभा के कुछ सदस्यों का विचार था कि राष्ट्रपति का चुनाव संसद द्वारा होना चाहिए। अन्त में दोनों में समन्वय किया गया और राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचन मण्डल द्वारा किया जाता है जिसमें संसद के निर्वाचित सदस्यों तथा राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य होते हैं।

डॉ. ओ. पी. गोयल (O.P. Goyal) के मतानुसार, संविधान सभा के सदस्यों ने समायोजन के सिद्धांत का प्रयोग उतना नहीं किया है जितना कि ग्रेनविल आस्टिन ने बताया है। जिन सिद्धांतों का प्रयोग किया गया प्रतीत होता है वे हैं– समझौते (Compromise), अनुकूलन (Adaptation) और समक्षता (Confrontation) के सिद्धांत। संविधान सभा के सदस्यों में परस्पर समक्षता (Confrontation) भी थी, विशेषकर सम्पति के अधिकार पर।

6 परिवर्तन के साथ चयन की कला (The Art of Selection with Modification) : संविधान सभा का दृष्टिकोण ' परिवर्तन के साथ चयन' के सिद्धांत पर आधारित था । संविधान सभा के सदस्यों का दृष्टिकोण संकीर्ण न होकर उदारवादी था। संविधान निर्माताओं का यह विचार था कि भारत के लिए एक उत्तम तथा व्यवहारिक संविधान बनाया जाए जो सुचारू ढंग से कार्य कर सके और देश की प्रगति के लिए सजीव साधन सिद्ध हो। अतः संविधान निर्माताओं ने पश्चिम का अन्धानुकरण नहीं किया, बल्कि उन्होंने उन्हीं बातो को लिया जो भारतीय स्थिति व आवश्यकताओं के अनुकूल थी। उदाहरणस्वरूप संविधान सभा ने इंग्लैंड से संसदीय शासन प्रणाली ली, परन्तु इंग्लैंड की एकात्मक व्यवस्था त्याग दिया तथा भारतीय परिस्थितियों को देखते हुए

संघात्मक व्यवस्था को अपनाया जो अमेरीका के संविधान की देन है, पर इसके साथ ही अमरीका के संविधान की अध्यक्षात्मक प्रणाली का त्याग किया। संविधान सभा ने भविष्य को ध्यान में रखकर संविधान का निर्माण किया। संविधान की संशोधन प्रणाली ' परिवर्तन के साथ चयन' के सिद्धांत का एक सुन्दर उदाहरण है। भाषा संबंधी मामले नये राज्यों की स्थापना, राज्यों के क्षेत्रों में परिवर्तन और उनका विलय आदि संसद के हाथों में रखकर संविधान सभा ने दूरदर्शिता का परिचय दिया।

1.2.6 संविधान सभा की समस्याएँ

संविधान निर्माण के समय सभा को कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जो इस प्रकार हैः–

1. भारत की विशालता तथा अनेकताः संविधान के निर्माण के समय भारत की जनगणना 36 करोड़ थी। इसमें विभिन्न धर्म, जाति, संस्कृति और भाषाओं के लोग शामिल थे। ऐसे में सभी को राष्ट्रीय एकता में बाँधना कठिन कार्य था।
2. रियासतों की समस्या : 600 रियासतों के नवाब सत्ता छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे और प्रजातन्त्र के विरोधी थे। उन्हें एक संघ के नीचे लाना कठिन कार्य था।
3. साम्प्रदायिकता की समस्या : आजादी से पहले यह एक प्रमुख समस्या थी जिसके कारण देश का विभाजन हुआ। परन्तु संविधान निर्माण करते समय साम्प्रदायिकता जैसी समस्या के उचित समाधान के लिए प्रावधानों की जरूरत थी जिसके लिए धर्म निरपेक्ष व्यवस्था को अपनाया गया लेकिन यह समस्या आज तक बनी हुई है।
4. राजभाषा की समस्या : देश के लिए राजभाषा की समस्या पैदा हुई। बहुसख्यक लोगों द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी को मान्यता दी गई परन्तु यह भी निर्णय लिया कि संक्रान्किाल में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग जारी रहेगा।

   इसके अतिरिक्त कुछ मौलिक प्रश्नों पर मतभेद सामने आए जैसे :–

   1. केन्द्र तथा राज्यों में शक्तियों का बटँवारा।
   2. संविधान की व्याख्या करने में न्यायालय की भूमिका।
   3. नागरिकों के अधिकारों और राष्ट्रीय सुरक्षा में सामंजस्य स्थापित करना।
   4. निजी सम्पति के अधिकारों को सामाजिक न्याय से जोड़ना।
   5. सत्ता का विकेन्द्रीकरण।

संविधान निर्माण की आलोचना

संविधान निर्मात्री सभा में कुछ कमियाँ थी जैसेः–

1. यह सर्व–प्रतिनिधि संस्था नहीं थी : इसमें नियुक्त किए गए सदस्यों की संख्या अधिक थी। चुने हुए सदस्य प्रत्यक्ष रूप से जनता के प्रतिनिधि नहीं थे। चुनाव साम्प्रदायिक आधार पर हुए। जनसंख्या के करीब 28 प्रतिशत व्यक्तियों को मतदान का अधिकार था। सभी व्यक्तियों को वोट डालने का अधिकार नहीं था।
2. कांग्रेस का अधिपत्यः कुल सदस्यों में 205 कांग्रेस से सम्बन्धित थे। संविधान सभा चुनाव में भी कांग्रेस कार्य समिति के इशारे से कुछ व्यक्ति चुने गए। भारत के विभाजन के बाद कांग्रेस का अधिपत्य 82 प्रतिशत हो

गया था। सिब्बन लाल सक्सेना ने शिकायत की है कि इस अधिपत्य के कारण संविधान सभा की कार्यवाही के रूप में सूचीबद्ध किया गया हैं।

3. हिन्दुओं का अधिपत्यः संविधान सभा के 296 सदस्यों में से 163 हिन्दु थे। अन्य वर्गों का प्रतिनिधित्व नाम मात्र का ही था। इसलिए संविधान निर्माण में हिन्दुओं के हितों का ही ध्यान रखा गया।

4. वकीलो का अधिपत्यः भारत के संविधान को वकीलों के लिए स्वर्ग कहा जाता है। कारण है संविधान सभा में वकीलों का अधिपत्य। संविधान को कानूनी प्रक्रिया प्रदान की गई है। यह जनता को अपनी शिकायतों को न्यायालय में ले जाने के लिए प्रेरित करता है और वकीलों के लिए ढ़ेर सारा कार्य जुटाता है। कानूनी प्रकृति के कारण एक साधारण व्यक्ति के लिए संविधान के प्रावधानों को समझना कठिन है।

5. संविधान का बहुत बड़ा आकारः मूलभूत संविधान में 22 भाग, 395 धाराएँ तथा 8 सूचियाँ शामिल थी। इसके अतिरिक्त इनके साथ ढेर सारे उप–प्रावधान, योग्यताएँ, सीमाएँ आदि भी जुडी हुई है। संविधानिक विशेषज्ञों का मानना है कि संविधान का आकार छोटा एवं स्पष्ट होना चाहिए इसकी भाषा उस देश की आम जनता की समझ से परे नहीं होनी चाहिए।

6. संविधान निर्माण में लम्बा समयः नजीरूद्दीन अहमद ने मसौदा समिति में बोलते हुए कहा था कि समिति के टालमटोल रवैये के कारण संविधान निर्माण में काफी समय लगा है क्योंकि यह समिति दोषपूर्ण संशोधनों को भी ईमानदारी एवं हिम्मत से वापिस नहीं करवा सकी और न ही उनके विकल्प ढूंढ सकी। इसलिए काफी लम्बा समय लगा। जबकि दक्षिणी अफ्रीका के संविधान में एक वर्ष, कनाड़ा के संविधान में 2 वर्ष का ही समय लगा।

7. यह स्वदेशी कम विदेशी अधिक हैः भारतीय संविधान स्वदेशी कम और विदेशी अधिक है। इसलिए इसे उधार लिया गया थैला भी कहां जाता है। परन्तु फिर भी यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान कर्म–योग्य है, लचीला है और इस कदर मजबूत है कि सारे देश को एक सूत्र में बाँधे रख सकता है। इसमें आवश्यकता पड़ने पर संशोधन किए जा सकते हैं अब तक इसमें 93 संशोधन हो चुके हैं।

1.2.7 निष्कर्ष

संविधान निर्माण के मुख्यतौर पर दो चरण थे। प्रथम 1857 से 1935 तथा दुसरा 1946 से 1949, ब्रिटिश राजशाही को सत्ता मिलने के पश्चात् ब्रिटिश सरकार के शासन के विभिन्न अधिनियम लागू किये। इनमें भारतीयों को भी विभिन्न शासन के संस्थानों के प्रतिनिधित्व दिया गया। इसका मूल मकसद था अपनी उपनिवेश हितों को पूरा करना न कि लोकतांत्रिक अधिकारों को प्रदान करना। ब्रिटिश सरकार ने अंततः भारतीयों के लिए एक संविधान सभा का गठन किया। संविधान सभा में विभिन्न उप–समितियों के सुझाव एवं निर्णय को अंतत संविधान में शामिल कर लिया गया।

1.2.8 मुख्य शब्दावली

- संविधान सभा
- संघीय
- प्रस्तावना
- केन्द्रीयकरण
- राष्ट्रमंडल

1.2.9 अभ्यास हेतू प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत के संविधान को अपनाने एवं लागू करने में क्या अंतर है?
2. भारत के संविधान को कब अपनाया गया तथा इसे कब लागू किया गया?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान की विकास की प्रक्रिया व समस्याओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. संविधान सभा की समितियों के कार्यों का वर्णन कीजिए।

1.2.10 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.

- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

1.3 भारतीय संविधान के स्त्रोत (Sources of Indian Constitution)

1.3.1 परिचय

किसी भी देश का संविधान विशुद्ध रूप से मौलिक नहीं हो सकता क्योंकि संविधान का निर्माण करते समय अन्य देशों की शासन प्रणालियाँ, विधि प्रालेखों, रीति–रिवाजों एवं परम्पराओं को मध्य नजर रखा जाता है। अर्थात् भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल प्रावधानों को संविधान में शामिल कर लिया गया। इसके साथ ही संविधान निर्माताओं ने भारतीय भौगोलिक परिवेश में घटित सभी प्रकार की घटनाओं को ध्यान में रखा। अर्थात् भारतीय संविधान के विभिन्न स्त्रोत है जो कि निम्न हैः–

1.3.2 उद्देश्य

- भारतीय संविधान के स्त्रोतों के बारे में जानना।
- संविधान सभा के बाद विवादों को जानना।
- 1935 का भारत सरकार अधिनियम को समझना।

1.3.3 भारतीय संविधान के स्त्रोत–

1. 1935 का भारत सरकार अधिनियम (Govt. of India Act, 1935): 1935 का भारत सरकार अधिनियम भारतीय संविधान का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। संविधान का आकार उसकी विषय–सूची तथा भाषा पर 1935 के अधिनियम की गहरी छाप है। प्रो आइवर जैनिंग्स (Prof. Ivor Jennings) के कथानुसार, '' भारतीय संविधान पर 1935 के अधिनियम का प्रभाव इतना अधिक है कि उसकी बहुत सी धाराओं का ज्यों का त्यों ही संविधान में रख लिया गया है'' (The Constitution derives directly from the Governement of India Act, 1935 from which, in fact,many of its provisions are copied textually). तुलनात्मक दृष्टिकोण से 1935 के अधिनियम की लगभग 200 धाराओं को ज्यों का त्यों थोड़ा बहुत परिवर्तन करे संविधान में लिया गया है। वर्तमान संविधान की धारा 352, जिसके अन्तर्गत राष्ट्रपति को बाह्य आक्रमण या आन्तरिक अशान्ति के कारण संकटकाल की घोषणा करने का अधिकार है, 1935 के अधिनियम की धारा 102 का ही रूप है। इसी प्रकार वर्तमान संविधान की धारा 251, जिसमें संघी तथा राज्य सरकारों के कानूनों के परस्पर विरोधी होने के विषय पर प्रकाश डाला गया है, बहुत सीमा तक 1935 के अधिनियम की 107 धारा की प्रतिलिपि है। वर्तमान संविधान की धारा , 356 जिसके अन्तर्गत राष्ट्रपति को राज्यों में सवैंधानिक मशीनरी के फेल होने पर संकटकाल की घोषणा करने का अधिकार है, 1935 के अधिनियम की धारा 92 से मिलती है। वर्तमान संविधान में केन्द्र और राज्यों में किया गया शक्तियों के विभाजन में तीन सूचियाँ दी गई थी : संघ–सूची, राज्य–सूची तथा समवर्ती सूची। संघ सूची में 59, राज्य–सूची में 54 तथा समवर्ती सूची में 36 विषय रखे गए हैं। इसके अतिरिक्त शक्तियों के विभाजन का आधार वही है जो कि 1935 के अधिनियम के लिए अपनाया गया था। 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय तथा कुछ प्रान्तों में दो सदनों की व्यवस्था की गई थी। 1935 के अधिनियम की तरह नए संविधान में प्रान्तों के निम्न सदन को विधानसभा और उपरि सदन को विधानपरिषद् का नाम दिया गया है। इन धाराओं के अतिरिक्त अनेक ऐसी धाराएँ है जो 1935 के अधिनियम से ली गई हैं। स्पष्ट है कि 1935 के अधिनियम नए संविधान का महत्वपूर्ण स्त्रोत है।

2. विदेशी संविधान (Foreign Country) : हमारे संविधान निर्माताओं का लक्ष्य एक अच्छे संविधान का निर्माण करना था, इसलिए उन्होंने बिना संकोच के विदेशी संविधानों से जो संस्थाएँ व नियम लिए उसका वर्णन इस प्रकार है।

(क) ब्रिटिश संविधान(British Constitutions): क्योंकि इंग्लैंड के साथ भारत के राजनीतिक सम्बन्ध बहुत लम्बे समय तक रहे, इसलिए स्वाभाविक था कि संविधान निर्माता ब्रिटिश शासन व्यवस्था को मुख्यतः अपना स्त्रोत बनाते। संसदीय शासन प्रणाली ब्रिटिश की देन है। भारत का राष्ट्रपति इंग्लैंड के राजा या रानी की तरह सवैंधानिक मुखिया है। भारत के मन्त्रीमण्डल की शक्तियाँ व स्थिति लगभग वही है जो ब्रिटिश मन्त्रीमण्डल की है। ब्रिटिश की तरह कानून के शासन की व्यवस्था को अपनाया गया है।

(ख) अमेरीकी संविधान (American Constitution) : अमरीकी संविधान की प्रस्तावना से भारतीय संविधान की प्रस्तावना मिलती–जुलती है। भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ, उप–राष्ट्रपति का पद इत्यादि अमरीकी संविधान से मिलते हैं।

(ग) कनाडा का संविधान (Canadian Constitution): कनाडा के संविधान का भी भारत के संविधान पर काफी प्रभाव पड़ा हैं। कनाडा के संघीय राज्य की भांति भारत को ' राज्यों का संघ' (Union of States) कहा गया है। हमारे संविधान में केन्द्र और राज्यों में शक्तियों का बटँवारा कनाड़ा के मॉडल के आधार पर किया गया है। दोनों देशों में अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र को दी गई हैं।

(घ) जर्मन संविधान (German Constitution): नए संविधान में राष्ट्रपति को जो संकटकालीन शक्तियाँ दी गई है, वे जर्मनी के वाईमर संविधान से ली गई हैं।

(ड) आयरलैंड का संविधान (Irish Constitution): आररिश संविधान से भारतीय संविधान–निर्माताओं ने राज्यनिति के निर्देशक सिद्धांतों को लिया है। राज्य सभा में कला, साहित्य, विज्ञान, सामाजिक सेवा के क्षेत्र में से प्रतिष्ठित व्यक्तियों को मनोनीत करने का विचार भी आयरलैण्ड के संविधान से लिया गया।

(च) दक्षिणी अफ्रीका का संविधान (Constitution of South Africa) : संविधान में संशोधन करने की विधि तथा राज्यसभा में सदस्यों की चुनाव विधि दक्षिण अफ्रीका से ली गई है। उपलिखित संविधानों के अतिरिक्त अनेक अन्य संविधानों से भी बहुत कुछ लिया गया है।

3. 1948 का मसौदा संविधान (Draft Constitution of 1948) : भारतीय संविधान का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत 1948 का मसौदा संविधान है जिसे डा. अम्बेडकर की अध्यक्षता में मसौदा समिति ने तैयार करके 21 फरवरी, 1948 को संविधान सभा के प्रधान डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को प्रस्तुत किया। इस मसौदा–संविधान में 315 अनुच्छेद तथा 8 अनुसूचियाँ थी। इस मसौदा–संविधान पर संविधान सभा में काफी वाद–विवाद हुआ। सदस्यों द्वारा लगभग 7635 संशोधन प्रस्ताव पेश किए गए जिनमें से 2473 प्रस्तावों पर विचार हुआ और इनमें से कई प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया गया। अन्त में जो नया–संविधान तैयार किया गया उसके 395 अनुच्छेद तथा 9 अनुसूचियाँ हैं। इसमें अधिकांश अनुच्छेद मसौदा–संविधान से ही लिए गए हैं।

4. भिन्न–भिन्न समितियों की रिपोर्ट (Reports of Different Committees): संविधान सभा ने मसौदा समिति की स्थापना से पूर्व अनेक समितियों की स्थापना की थी, जिनमें मुख्य इस प्रकार थीः

(क) संघीय शक्तियों की समिति (Union Power Committee)

(ख) संघीय संवैधानिक समिति (Union Constitution Committee)

(ग) प्रान्तीय संवैधानिक सम्बन्धी समिति (Provincial Constitution Committee)

(घ) अल्पसंख्यकों तथा मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित परामर्शदात्री समिति (Advisory Committee on Minorities and Fundamentals Rights)

संघ तथा राज्यों में वित्तीय सम्बन्धों की समिति (Committee on Financial Relations between Union and States)

इन समितियों ने विचार–विमर्श के पश्चात् अपनी रिपोर्ट संविधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत की। उन पर वाद–विवाद के पश्चात् सदस्यो द्वारा आवश्यक संशोधन रखे गए। संविधान सभा ने इन भिन्न–भिन्न समितियों की रिपोर्टों के आधार पर ही संविधान सभा में मसौदा संविधान (Draft Constitution) प्रस्तुत करते हुए अम्बेडकर ने कहा था कि कुछ एक विषयों को छोड़कर मसौदा समिति ने संविधान सभा के निर्देशों के अनुसार ही मसौदा–संविधान तैयार किया है। हमारे संविधान के अनेक अनुच्छेदों का आधार ही ये रिपोर्ट हैं जो विभिन्न समितियों द्वारा प्रस्तुत की गई है।

5. संविधान सभा का वाद–विवाद (Debates of Constitution Assembly): संविधान सभा की विभिन्न समितियों के वाद–विवाद तथा संविधान सभा के अन्दर वाद–विवाद संविधान का एक उपयोगी स्त्रोत है तथा उच्चतम न्यायालय ने इनका उपयोग किया है। गोपालन के अभियोग में संविधान सभा की रिपोर्ट का उद्धरण दिया गया था।

6. 1950 का संविधान (Constitution of 1950): भारतीय शासन प्रणाली का पता हमें मुख्य रूप से उस संविधान या प्रलेख से लगता है जो संविधान सभा द्वारा बनाया गया था और जो 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ था। यह संविधान हमारी संवैधानिक व्यवस्था का मुख्य आधार है।

7. संशोधन (Amendments): भारतीय संविधान के लागू होने के बाद आज तक 84 संशोधन हो चुके हैं और इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन संशोधनों द्वारा 1950 ई. के संविधान में काफी परिवर्तन हुआ है। इसमें बहुत सी बातों की वृद्धि हुई है। प्रथम संशोधन द्वारा नागरिकों की स्वतन्त्रताओं पर उचित प्रतिबन्ध लगाए जाने की व्यवस्था की गई सातवें संशोधन राज्यों को पुर्नगठन (Re-organisation) हुआ और उच्च न्यायालयों के सेवा–निवृत जजों को वकालात करने का अधिकार दिया गया (परन्तु जिस उच्च न्यायालय से सेवानिवृत हुए हों उसी में नहीं)। आठवें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों व कबीलों के लिए विशेष अधिकारों को 1960 से 1970 तक बढ़ाया गया था। 13वें संशोधन द्वारा नागालैंड (Nagaland) राज्य की व्यवस्था की गई। 15वें संशोधन द्वारा उच्च न्यायालयों के जजों की पदावधि 60 से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दी गई। 19वें संशोधन द्वारा चुनाव सम्बन्धी अपीलों को चुनाव न्यायाधिकरण के स्थान पर उच्च न्यायालयों को भेजे जाने की व्यवस्था की गई। 21 वें संशोधन द्वारा सिन्धी भाष को भारतीय भाषाओं की सूची में जोडा गया और 22वें संशोधन द्वारा असम राज्य में एक पहाडी स्वायत्त राज्य को बनाए जाने की व्यवस्था की गई जो अन्त में 'मेघालय' (Meghalya) के नाम बन चुका है। 23 वें संशोधन के अनुसार संसद को यह अधिकार

दिया गया है कि वह संविधान के किसी भाग को, जिनमें मौलिक अधिकारों का भाग भी शामिल है, शोध सकती है। 25वें संशोधन के अनुसार राजा–महाराजाओं के प्रिवी पर्सो (Prity purses) तथा विशेषधिकारों का समाप्त किया गया है। 27वें संशोधन द्वारा संविधान में परिवर्तन भी हुआ है और बढ़ोतरी भी। इनके अध्ययन के बिना संविधान का पूर्ण अध्ययन नहीं हो सकता।

26 अप्रैल, 1975 को संविधान के 36वें संशोधन द्वारा सिक्किम को भारत का 22वां राज्य बनाया गया। 1976 में 42वां संशोधन किया गया। इस संशोधन में 59 धाराएँ हैं और इसके द्वारा संविधान में बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं। 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में संशोधन करके भारत को प्रभुत्वसम्पन्न, समाजवादी, धर्म–निरपेक्ष, प्रजातन्त्रीय गणराज्य घोषित किया गया है, मौलिक कर्तव्यों का वर्णन किया गया है, राजनीति के निर्देशक सिद्धांतों को मौलिक अधिकारों की अपेक्षा प्रधानता दी गई है, उच्च न्यायालयों की शक्तियों को सीमित किया गया है, इत्यादि। 43वें संशोधन के द्वारा अनुच्छेदों 32A, 131A, 144A, 226A तथा 228A को हटाया गया है ताकि सर्वाच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को वहीं अधिकार पुनः दिया जा सके जो उनके पास 42वें संशोधन से पूर्व था। 44वें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों व कबीलों के लिए विशेष अधिकारों की अवधि 1990 तक बढ़ा दी गई। 52वें संशोधन द्वारा दल–बदल की बुराई को समाप्त करने का प्रयास किया गया है। 61वें संशोधन द्वारा मताधिकार की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है 62 वें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों व कबीलों के लिए विशेष अधिकारों की अवधि 2000 ई. तक बढ़ा दी गई 63वें संशोधन द्वारा 59वें संवैधानिक संशोधन को रद्द किया गया है। 64वें संशोधन द्वारा राज्यों के 55 भूमि सुधार और भूमि सीमा कानूनों का संविधान की नौवी अनुसूची में शामिल किया गया। 67वें संशोधन तथा 68वें संशोधन द्वारा 6–6 महीने के लिए पंजाब में राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाई गई। 69 वें संशोधन द्वारा संघीय क्षेत्र दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (National Capital Territory) घोषित किया गया। इस संशोधन के अन्तर्गत दिल्ली के लिए विधानसभा, मुख्यमंत्री तथा मन्त्रीपरिषद की व्यवस्था की गई है। 71वें संशोधन द्वारा नेपाली, मणिपुर तथा कोंकणी को आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। 72वें संशोधन द्वारा त्रिपुरा की विधानसभा में अनुसूचित कबीलों के लिए 20 सीटे सुरक्षित रखी गई हैं। तथा 74वें संशोधनों द्वारा पंचायती राज–संस्थाओं तथा नगर–पालिकाओं संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया गया है। इन संस्थाओं की अवधि 5वर्ष निश्चित की गई है। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटे सुरक्षित रखी गई है। 75वें संशोधन द्वारा राज्य स्तर पर (Rent Tribunal) की व्यवस्था की गई। 76वें संशोधन द्वारा तमिलनाडु में 69 प्रतिशत आरक्षण लागू करने सम्बन्धी व्यवस्था की गई। 77वें संशोधन द्वारा सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों के लिए पदोन्नित के मामले में भी आरक्षण की व्यवस्था की गई। 78वें संशोधन द्वारा राज्यों के कुछ भूमि सुधार कानून संविधान की नौंवी अनुसूची में शामिल किए गए। 79वें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जन–जातियों के लिए संसद एवं विधानसभाओं में सन् 2010 तक आरक्षण बढ़ा दिया गया। 80वें संशोधन द्वारा केन्द्र और राज्यों में राजस्व का पुनर्वितरण किया गया। राज्यों की राजस्व की भागीदारी में वृद्धि की गई । 81वें संशोधन द्वारा अनुसूचित जाति और जन–जाति के लिए आरक्षित व्यवस्था (बैकलॉग) शक्तियों को आरक्षण की पचास फीसदी सीमा के बाहर रखने की व्यवस्था की गई। 82वें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों व कबीलों को मैडिकल तथा अभियांत्रिक अनुशासन में योग्यताप्रदायी (Qualifying) अंकों में रियायत दी गई। 83वें संशोधन का सम्बन्ध अरूणाचल प्रदेश में पंचायती राज में आरक्षित स्थानों से है। 84वें संशोधन द्वारा तीन नए राज्यों'– झारखंड, छत्तीसगढ़ तथा उत्तरांचल का निर्माण किया गया।

8. संसद अधिनियम (Acts of Parliaments): संविधान की बहुत सी बातों का पता संसद द्वारा पास किए गए विभिन्न अधिनियमों से चलता हैं। संविधान में बहुत से ऐसे अधिनियम व उपबन्ध है जिन्होंने संसद को विस्तार से बातें निश्चित करने का अधिकार दिया है। ऐसे अधिनियमो से भी संविधान की बहुत–सी बातें निश्चित हुई है। ऐसे अधिनियमों में से मुख्य नीचे दिए गए हैं:

1. निरोधक नजरबन्दी अधिनियम, 1950 (Prevemtove Detention Act, 1951)
2. 1950, 1951 का जन–प्रतिनिधित्व अधिनियम (Representation of People's Act, 1950-51)
3. 1951 का वित्त आयोग का अधिनियम (Finance Commission Act, 1951)
4. 1951 का राष्ट्रपति तथा उप–राष्ट्रपति चुनाव अधिनियम (Presidential and vice-Presidential Election Act, 1951)
5. भारतीय नागरिकता अधिनियम (Indian Citizen Act, 1951)
6. राज्य पुनर्गठन अधिनियम, (State Reorganisation Act, 1956)
7. सर्वाच्च न्यायालय (न्यायधीश संख्या) अधिनियम, (Supreme Court (Number of Judges) Act, 1956)
8. बाम्बे पुनर्गठन अधिनियम (Bombay Reorganisation Act, 1956)
9. नागालैंड राज्य अधिनियम (State of Nagaland Act, 1962)
10. सरकारी राज्य अधिनियम (Official Languages Act, 1963)
11. पंजाब पुनर्गठन अधिनियम (The Punjab Re-organisation Act, 1966)
12. 1967 का गैर–कानूनी गतिविधियों से बचाव सम्बन्धी एक्ट (The Unlawful Activities Prevention Bill, 1967)
13. 1971 का आन्तरिक सुरक्षा स्थापित रखने सम्बन्धी एक्ट (Maintenance of Internal Security Act, 1971)
14. 1974 का विदेशी मुद्रा की रक्षा तथा स्मललिंग से बचाव सम्बन्धी एक्ट (The Conservation of the Foreign Exchange and Prevention of Smugling Activities Act)
15. 1977 का राष्ट्रपति और उप–राष्ट्रपति के चुनाव के विवादों से सम्बन्धित एक्ट (Presidential and Vice-Presidential Poll dispute Act , 1977)
16. 1979 का विशेष न्यायालयों सम्बन्धी कानून (Special Court Act,1979)
17. 1980 का राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बन्धी कानून (National Security Act, 1980)
18. 1988 धार्मिक संस्थाएँ दुरूपयोग से बचाव, (Prevention of Misuse Act, 1988)

19. 1988 लोगों के प्रतिनिधित्व एक्ट (संशोधन) (The Representation of the People's (Amendment) Act,1988)

20. राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार कानून 1992 (The Government of National Capital Territory Act, 1992)

21. राज्यपाल वेतन, भत्ते और विशेषाधिकार संशोधन कानून (The Governor's Emoluments, allowances and Privileges Amendment Act 1992)

22. राष्ट्रपति और उप–राष्ट्रपति चुनाव (द्वितीय संशोधन) अधिनियम 1997 (Presidentail and vice presidential) (Second Amendment, Act 1992) इसके बाद भी कई अधिनियम पास किए गए।

9. न्यायिक निर्णय (Judicial Decision) : अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश ह्यूज ने कहा है,'' हम संविधान के अधीन है परन्तु संविधान वह है जो न्यायधीश कहते हैं।'' यह बात भारत में भी लागू होती है। यहाँ संविधान का विकास न्यायपालिका के कई नियमों द्वारा भी हुआ है। भारतीय न्यायपालिका को संविधान की व्याख्या तथा उसकी रक्षा करने का अधिकार और उत्तरदायित्व सौंपा गया है। अब तक बहुत से मुकद्दमें में सर्वोच्च ने संविधान के बहुत से उपबन्धों की व्याख्या की है और उनका एक निश्चित अर्थ बताया है गोपालन बनाम मद्रास राज्य नामक मुकद्दमें में सर्वाच्च न्यायालय ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की सीमा के बारें में निर्णय दिया है। बंगाल कम्युनिस्टी कम्पनी लिमिटेड वि☺ बनाम राज्य नामक मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि सर्वोच्च न्यायालय को अपने पहले निर्णय को रद्द करने या लागू होने से रोकने का पुरा अधिकार है। मद्रास राज्य बनाम चम्पाकम के मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि मौलिक अधिकारों राज्यनीति के निर्देशक सिद्धांतों पर प्राथमिकता प्राप्त है। चिन्तामन राव के मुकद्दमें में संविधान की धारा 19 में दिए गए 'उचित प्रतिबन्धों' शब्दों की व्याख्या की गई है। शायद सबसे महत्वपूर्ण निर्णय गोलकनाथ केस का था जिसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय ने यह फेसला दिया कि संसद कोई ऐसा कानून नहीं बना सकती जिसके अनुसार नागरिकों के मौलिक अधिकरों में कमी हो, परन्तु संसद ने 24वां संशोधन पास करके सर्वोच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लगाई गई सीमा को दूर कर दिया और मौलिक अधिकारों में संशोधन पास करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। 1973 ई. में केशवानन्द भारती केस में सर्वोच्च न्यायालय ने गोलक नाथ मुकद्दमें में दिए अपने निर्णय को रद्द कर दिया और यह निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है, पर संविधान के मूल ढाँचे में परिवर्तन नहीं कर सकती। मिनर्वा मिल्स के मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने 9मई, 1980 को यह निर्णय दिया कि संसद की संविधान में संशोधन करने की शक्ति असीमित नहीं है।

10. नियम, विनियम, आदेश आदि संसद के प्रत्येक सदन को यह अधिकार है कि अपनी कार्यविधि को नियमित करने के लिए तथा कार्य चलाने के लिए स्वयं नियम बनाए। इसी प्रकार राष्ट्रपति को भी अधिकार की स्थितियों के सम्बन्ध में भी नियम बनाता है तथा वह संघीय क्षेत्रों की शान्ति तथा उत्तम प्रशासन के लिए भी नियम बनाने का अधिकार रखता है। इस प्रकार के नियम, विनियम तथा आदेश भी संविधान के स्त्रोत बन जाते हैं।

11. प्रथाएं : वैसे तो भारत का संविधान एक लिखित संविधान है और इस प्रथाओं व रीति–रिवाजों के लिए कोई सीान नहीं, परन्तु प्रथाएँ प्रत्येक देश में अपना सीान बना ही लेती है और भारतीय संविधान भी इससे अछूता नहीं रह सका है। संविधान के लागू होने से लेकर अब तक भारत में बहुत सी संवैधानिक प्रथाए प्रचलित हो गई है। वैसे तो राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है और वह अपने कार्यों के िलए संघीय सरकार के प्रति ही उत्तरदायी है तथा राष्ट्रपति को हटा भी सकता है। परन्तु अब यह प्रथा चल गई है कि संघीय सरकार राज्यपाल की नियुक्ति करते समय संबंधित राज्य सरकार से परामर्श करती है और परामश22 कवह राज्यपाल को हटा भी देती है। गर्वनर उस राज्य का निवासी नहीं होना चाहिए जिस राज्य में उसकी नियुक्ति की जा रही हो। संविधान में मन्त्रीपरिषद का वर्णन किया गया है, न कि मन्त्रीमण्डल का। मन्त्रीमण्डल प्रथा पर आधारित है। 42वें संशोधन से पूर्व राष्ट्रपति मन्त्रीमण्डल का परामर्श मानने के लिए बाध्य नहीं था, परन्तु प्रथा के अनुसार 22 कवह मन्त्रीमण्डल का परामर्श मानने के लिए बाध्य है। यह भी प्रथा पर आधारित है कि राष्ट्रपति उसी व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है, जिसे लोकसभा में बहुमत प्राप्त हो। 1977 ई. में लोकसभा के अध्यक्ष को दो बार सर्व–सम्मति से चुनकर एक स्वस्थ परम्परा आरम्भ की गई। 1980,1985,1989,1991,1996 और 1999 में अध्यक्ष को सर्वसम्मति से चुना गया। इन प्रथाओं के अतिरिक्त अन्य प्रथाओं का भी विकास हो चुका है।

12. संवैधानिक विशेषज्ञों के विचार : समस्त देशों में संवैधानिक विशेषज्ञों तथा लेखकों के विचारों का बहुत आदर किया जाता है। यह विचार भी संवैधानिक कानून का एक स्त्रोत है। उदाहरणतः ब्रिटिश संविधान के सम्बन्ध में ब्लैकस्टोन , डायसी, जैनिंगस के विचारों को बड़ी महता दी जाती है। डायसी की प्रसिद्ध पुस्तक ' संविधान का कानून' जैनिंगस की ' कानून तथा संविधान' तथा मेय की ' पार्लियामैंटरी प्रक्टिस' का उदाहरण प्रायः दिया जाता है। विदेशी तथा भारतीय बहुत 22 कवह22खकों ने भारतीय संविधान पर महान् ग्रंथ रचे हैं। उनमें से कुछ प्रसिद्ध निम्नलिखित हैंः

1. ऐलैग्जैंडरोविक्स, '' भारत का संवैधानिक विकास
2. जैंनिग्स, ' भारत के संविधान की कुछ विशेषताएँ'
3. बसु, ' भारतीय संविधान'
4. शुक्ला, भारतीय संविधान पर टिप्पणियाँ
5. ए. बी. लाल, ' भारतीय संसद'
6. डी. डी. बसु, ' भारतीय संविधान पर टिप्पणियाँ

निष्कर्ष

उपर्लिखित इन सभी बातों से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान का पूर्ण ज्ञान केवल उसी प्रलेख से नहीं हो सकता जो कि 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया था बल्कि इसके अतिरिक्त इसके और भी कई साधन हैं और वे काफी महत्वपूर्ण हैं। इन अन्य साधनों के अध्ययन के बिना भारतीय संविधान का अध्ययन पूर्ण है।

जैसे–जैसे भारतीय राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों में परिवर्तन होता गया है, वैसे ही संविधान में परिवर्तन व विकास संसदीय कानून, न्यायिक निर्णयों, प्रथाओं, संशोधनों आदि द्वारा हआ है और हो रहा है।

1.3.4 भारत का संविधान 1935 के अधिनियम की कार्बन कॉपी

भारत के संविधान ने एक उत्तम तथा व्यवहारिक संविधान बनाने के लिए संसार के प्रसिद्ध संविधानों की छानबीन की, उन्होंने विदेशी संविधानों से बहुत कुछ लिया, पर उनका अधिक झुकाव भारतीय अधिनियम, 1935 की ओर ही रहा। इस अधिनियम ने एक संघीय सरकार की व्यवस्था की थी तथा यह अधिनियम ब्रिटिश सरकार का सबसे लम्बर कठिन अधिनियम था। उसका उद्देश्य भिन्न–भिन्न संरक्षणों के अनुसार भारतीयों को शक्ति देना था। चाहे इस अधिनियम का संघीय भाग लागू न किया जा सका, केवल प्रान्तीय भाग ही लागू किया जा सका, तथापि भारतीय जनता उसकी धाराओं से परिचित थी। इसके अतिरिक्त यह 1935 का अधिनियम ही था, जो उपयोगी संशोधन के साथ 1947 से 1950 तक भारत के संविधान के रूप में प्रचलित रहा, इसलिए स्वभाविक ही था कि हमारे संविधान निर्माता 1935 के अधिनियम से प्रभावित होते।

इस सम्बन्ध में प्रायः कहा जाता है कि भारतीय संविधान पर बहुधा 1935 के अधिनियम की गहरी छाप है। तुलनात्मक दृष्टिकोण से 1935 के अधिनियम की लगभग 200 धाराओं को ज्यों का त्यों थोडा बहुत परिवर्तन करने संविधान में ले लिया गया है। प्रो. आईवर जैनिग्स के शब्दानुसार, '' भारतीय संविधान पर सन् 1935 ई. के अधिनियम का प्रभाव इतना अधिक है कि इसकी बहुत–सी धाराओं को ज्यों का त्यों रख लिया गया है।'' डॉ. पंजाब राव देशमुख ने तो यहाँ तक कहा है,'' संविधान निश्चिततः 1935 का अधिनियम है, केवल इसमें व्यस्क मताधिकार जोड़ा गया है,'' इसमें संदेह नहीं कि हमारा संविधान अपनी रूपरेखा तथा भाषा में 1935 के अधिनियम के साथ बहुत मिलता–जुलता है तथा उसका ऋणी भी है।

1. वाक्य रचना सम्बन्धी समानताः 1935 के अधिनियम तथा नवीन भारतीय संविधान में वाक्य रचना सम्बन्धी समानता निम्नलिखित कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हैः

   (क) वर्तमान संविधान की 256 वीं धारा में यह कहा गया है कि प्रत्येक राज्य की कार्यकारिणी की शक्ति प्रयोग इस प्रकार किया जाएगा, जिससे संसद द्वारा बनाए गए कानूनों का निश्चित रूप से पालन हो। केन्द्र कार्यकारी शक्ति को इस सम्बन्ध में, राज्य सरकारों को आवश्यक आदेश देने का अधिकार प्राप्त हो गया संविधान की इस धारा की भाषा तथा 1935 के अधिनियम की 126वीं धारा की भाषा में कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता।

   (ख) नवीन संविधान की 352वीं धारा, जिनका राष्ट्रपति की संकटकालीन घोषणा से सम्बन्ध है, अपनी वाक्य रचना में 1935 के अधिनियम की 102वीं धारा से मिलती जुलती है। इसी प्रकार संविधान की धारा 251, जिसकें संघ तथा राज्य सरकारों के कानूनों के परस्पर विरोधी होने के विषय पर प्रकाश डााला गया है, बहुत सीमा तक 1935 के अधिनियम की 107 वीं धारा की प्रतिलिपि है।

   (ग) संविधान की धारा 356, जिसमें संवैधानिक मशीनरी के राज्यों में फेल हो जाने से उत्पन्न संकट का वर्णन किया गया है, अपनी वाक्य रचना में अधिनियम के अनुच्छेद 92 से मिलती जुलती हैं।

2. सिद्धांतों तथा क्रिया में एकरूपता : सिद्धांतों तथा क्रिया की दृष्टि से भी 1935 ई. के अधिनियम तथा नवीन संविधान में बहुत एकरूपता है। दोनों की तुलना करने पर पता चलता है कि नवीन संविधान में इस सम्बन्ध में अधिनियम की बहुत सी बातों को ग्रहण किया है, जिनमें से कुछेक का वर्णन इस प्रकार हैः

(क) संघीय व्यवस्थाः 1935 ई. के अधिनियम द्वारा जिस सर्व–भारतीय संघ को सीापित करने का सुझाव दिया

गया था, वह अपनी बनावट में संसार के दूसरे संघो से अलग था। भारतीय संविधान ने भी जिस संघ की सीापना की है, वह अपने प्रकार का है, इसके अतिरिक्त भारतीय संघ अपनी रूपरेखा में बहुत सीमा तक अधिनियम द्वारा प्रस्तावित संघ से मिलता जुलता है।

(ख) शक्तियों का विभाजनः 1935 के अधिनियम क्षरा शक्तियों का विभाजन किया गया था। इस सम्बन्ध में तीन विषय सूची, प्रान्तीय सूची, संघ सूची, समवर्ती सूची थे। संघ–सूची में 59, राज्य–सूची में 54 तथा समवर्ती सूची में 36 विषय रखे गए थे। नवीन संविधान में भी इसी प्रकार शक्तियों का विभाजन किया गया है तथा संघ–सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची में क्रमशः 97,66 तथा 47 विषय रखे गए है। इसके अतिरक्ति शक्तियों के विभाजन का आधार लगभग वही है जो कि 1935 के अधिनियम के लिए अपनाया गया है।

(ग)केन्द्र अधिक शक्तिशाली : 1935 के अधिनियम द्वारा संघ में केन्द्र को बहुत शक्तिशाली बनाने का आयोजन किया गया था। गर्वनर–जनरल को प्रान्तीय क्षेत्र में हस्तक्षेप करने के लिए इतनी शक्ति दी गई थी 24 कवह इनके आधार पर संघात्मक सरकार को एकात्मक सरकार में बदल सकता था। नवीन संविधान में भी इसी प्रकार की व्यवस्था की गई है। राष्ट्रपति के संकट काल की घोषणा करने पर संघीय संविधान संशोधन किए बिना एकात्मक सरकार में बदला जा सकता है।

(घ) द्विसदनीय विधानमण्डल : 1935 के अधिनियम ने केन्द्रीय तथा भारतीय प्रान्तों में दूसरे सदन का प्रतिबन्ध किया था। वर्तमान संविधान में भी संसद को द्विसदनीय बना दिया तथा राज्यसभा के रूप में उपरिसदन की सीापना की गई थी। इसी प्रकार अनुच्छेद 168 के अनुसार कई राज्यों में भी द्विसदनीय विधान सभाएँ सीापित की गई हैं।

(ड) संसदीय शासन प्रणाली : 1935 के अधिनियम में भारतीय संविधान में संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है और इस व्यवस्था पर 1935 के अधिनियम का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

(च) 1935 के अधिनियम की भान्ति हमारे नवीन संविधान में कई प्रकार के सरंक्षण की आज्ञा दी गई है, जिनमें से कुछ निर्वाचन आयोग , लोक सेवा आयोग, परिगणित जातियों के धार्मिक, सांस्कृतिक तथा भाषा सम्बन्धी अधिकारों के रूप में हैं। सर्वोच्च न्यायालयों पर नियंत्रण का अधिकार तथा केन्द्रीय सरकार की राज्य सरकारों के शासन को अपने अधिकार में लेने की व्यवस्था आदि भी भारतीय संविधान में दिए गए सरंक्षण हैं। सत्य बात यह है कि संविधान के निर्माण से पहले 1935 ई. का अधिनियम भारतवर्ष का संविधान था। नवीन संविधान की रचना करते समय इसको पूर्ण रूप से दृष्टिविगत कर देना असम्भव था, विशेषकर जबकि संविधान के निर्माता ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त प्रशासकीय ढांचे को अपनाने के पक्ष में थे तथा अधिनियम द्वारा बनाए गए संविधान को वर्तमान संविधान में सीन देना बुद्धिमता थी। प्रारूप कमेटी के प्रधान डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने इस सम्बन्ध में कहा था, '' मैं इस बात में किसी प्रकार की लज्जा अनुभव नहीं करता कि हमने नवीन संविधान रचना करते हुए 1945 के अधिनियम की बहुत सी बातों को अपनाया है। किसी अच्छी बात को अपनाते हुए हमें डरना नहीं चाहिए। दूसरे संवैधानिक सिद्धांत किसी विशेष व्यक्ति अथवा देश के एकाधिकार नहीं।

नवीन संविधान : 1935 ई. के अधिनियम का गौरवमय तथा विस्तृत रूप नहीं है : चाहे संविधान में 1935 के अधिनियम की कुछ धाराओं को अपनाया गया है फिर भी नवीन संविधान उस अधिनियम का एक गौरवपूर्ण और विस्तृत रूप नहीं भावात्मक दृष्टि से नवीन संविधान अधिनियम से बहुत भिन्न है।

1. सबसे पहले 1935 का अधिनियम एक ऐसा संविधान था, जिसे ब्रिटिश संसद ने भारतवर्ष के लिए बनाया था।

इसको भारतीयों की इच्छा के विपरीत उन पर थोप दिया गया था। इसकी वास्तविक शक्ति ब्रिटिश सरकार तथा गर्वनर जनरल तथा तथा गर्वनरों के हाथ में थी। इसके विपरीत भारत का वर्तमान संविधान स्वतंत्र राष्ट्र का संविधान है तथा इसकी सत्ता भारतीय नागरिकों के पास है। भारतीयो को अपने संविधान संविधान की रचना करना इस बात को सूचित करता है कि विदेशी राज्य समाप्त हो गया है तथा राजनीतिक क्षेत्र में भारतीय अपने भाग्य के स्वयं विधाता है। अमरनन्दी के कथानुसार, '' 1935 के अधिनियम पराधीन लोगों को विदेशी शासकों द्वारा दी गई सीमित स्वशासन की रियासत थी जबकि भारतीय संविधान स्वतंत्रता राष्ट्र द्वारा अपने मामलों को नियमित करने वाला एक मौलिक कानून है।'' के सन्थानम के अनुसार, '' यद्यपि 1935 के अधिनियम की बहुत सी धाराएँ अपने शाब्दिक रूप में ली गई है, परन्तु संविधान का आधार बदल चुका है। प्रभुसत्ता ब्रिटिश संसद के हाथों से निकल कर भारतीय लोगों के पास है৷

2. नवीन संविधान में मौलिक अधिकार तथा राज्य के निर्देशक सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। मौलिक अधिकारों की व्यवस्था करके संविधान ने भारतीय नागरिकों को नवीन मान दिया गया है। जबकि सरकार के निदेशक सिद्धांतों से भारत में कल्याणकारी राज्य को सवैंधानिक अधिकार दिया गया है। 1935 के अधिनियम में इस प्रकार की कोई विशेषता न थी।

3. 1935 ई. के अधिनियम के अधीन वोट का अधिकार बहुत सीमित था। तथा ब्रिटिश भारत के लगभग 14 प्रतिशत नागरिक ही चुनाव में भाग लेते थे। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम द्वारा साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली की व्यवस्था की गई थी। परिणामस्वरूप, भारतीय जनता पृथ्क–पृथक वर्गों , श्रेणियों तथा हितों में विभक्त हो गई थी, नवीन संविधान ने इस राष्ट्र विरोधी प्रणाली को समाप्त कर दिया है तथा इसके सीान व्यस्क मताधिकार की सीापना की है। अब भारत के प्रत्येक उस नागरिकों को जिसकी आयु 18 वर्ष तथा इससे अधिक है, वोट का अधिकार प्राप्त है, तथा वह सरकार बनाने में भाग ले सकता है।

4. नवीन संविधान ने भारत में ससंदीय सरकार का उचित प्रबंध किया है। केन्द्र तथा राज्यों में कार्यपालिका को विधानपालिका के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है तथा मन्त्रीमण्डलों को शासन की वास्तविक शक्ति दी गई है। राष्ट्रपति तथा गर्वनरों के पास विशेष शक्तियाँ नहीं है। वे नाममात्र के मुखियाँ हैं। 1935 के अधिनियम में ऐसी कोई धारा न थी। केन्द्रीय मन्त्रीमण्डल का, जिसको गर्वनर जनरल के शासन प्रबंध में सहायतार्थ बनाया गया था। शासन प्रबंध पर विशेष प्रभाव नहीं था और गर्वनर जनरल सवैंधानिक मुखिया होने के सीान पर अपने क्षेत्र में तानाशाह था। उसके प्रति शक्तिशाली होने के कारण कार्यपालिका का विधानपालिका के सम्मुख उत्तरदायित्व निरर्थक था। राज्य क्षेत्र में भी अधिनियम द्वारा सीापित की गई उतरदायी सरकार मूलतया त्रुटिपुर्ण थी।

5. 1935 के अधिनियम के अधीन संघीय विधानपालिका तथा राज्य विधानमंडल को संविधान के संशोधन के सम्बन्ध में कोई शक्ति नहीं दी गई थी। संविधान के संशोधन का अधिकार केवल ब्रिटिश संसद को था, परन्तु नवीन संविधान के संशोधन का अधिकार भारतीय संसद को दिया गया है। कुछ विशेष धाराओं के संशोधन के लिए राज्य विधानसभाओं की स्वीकृति भी लेनी आवश्यक है।

6. 1935 के अधिनियम की अपनी प्रस्ताव नहीं थी। इसमें 1919 ई. के अधिनियम न्यायालय नहीं था, परन्तु वर्तमान संविधान की अपनी बड़ी महत्वपूर्ण प्रस्तावना है।

7. 1935 के अधिनियम के अधीन भारत का संघीय न्यायालय नहीं था, क्योंकि इसके निर्णयों के वि☺ प्रिवी

कौंसिल के पास अपील की जा सकती थी, परन्तु नए संविधान के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय अन्तिम न्यायालय है। इसके निर्णयों के वि☺ कहीं अपील नहीं की जा सकती।

8. 1935 के अधिनियम के अधीन साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली को लागू किया गया था। ताकि विभिन्न धर्मों के लोगों में फूट डालकर शासन किया जा सके, परन्तु संविधान के अन्तर्गत संयुक्त चुनाव प्रणाली को लागू किया गया है।

1.3.5 निष्कर्ष :

उपर्युक्त वर्णन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि नवीन संविधान में 1935 के अधिनियम की बहुत सी धाराओं को अपनाया गया है, फिर भी यह अधिनियम का गौरवमय तथा विस्तृत रूप नहीं है। इसलिए डॉ. पंजाब राव देशमुख के इस कथन में, '' नवीन संविधान तथा 1935 के अधिनियम में वयस्क मताधिकार को छोड़कर कोई अन्तर नहीं,'' कोई विशेष वनज नहीं।

1.3.6 मुख्य शब्दावली

- अधिनियम
- संविधान सभा
- संशोधन
- प्रथाएँ
- द्विसदनीय

1.3.7 अभ्यास हेतू प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत सरकार अधिनियम 1935, अन्य पूर्व अधिनियमों से किस प्रकार भिन्न था?
2. भारतीय संविधान के प्रमुख स्त्रोतों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

1.3.8 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.

- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

1.4 भारतीय संविधान की विशेषताएँ

1.4.1 परिचय

संविधान को एक सामाजिक दस्तावेज माना गया है क्योंकि इसमें देश की ऐतिहासिक, सामाजिक एवं आर्थिक दशाएँ प्रतिबिंबित होती हैं। जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि यदि कोई संविधान आम जनता के जीवन, उद्देश्य, आशाएँ एवं जरूरत पर ध्यान नहीं देता तो वह खोखला हो जाता है। भारत के संविधान में न केवल सरकारी मशीनरी की स्थापना को ध्यान में रखा गया है बल्कि इसे परिवर्तन एवं विकास का यन्त्र माना गया है। इसके माध्यम से भारत में प्रजातांत्रिक, समाजवादी , धर्मनिरपेक्ष गणराज्य की स्थापना की गई है ताकि न्याय, स्वतन्त्रता, समानता एवं इसके बन्धुत्व के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। इसके द्वारा राज्य को नीति निर्देश दिए जाते हैं ताकि एक कल्याणकारी सरकार का स्वप्न साकार हो सकें।

1.4.2 उद्देश्य

- संविधान के अर्थ को जानना।
- संविधान की विशेषताओं को समझना।
- संविधान निर्माण की वैचारिक पृष्ठभूमि को समझना।
- भारतीय संविधान में नागरिकों अधिकारों व कर्तव्य को जानना।

1.4.3 संविधान का अर्थ व विशेषताएँ

साधारण शब्दों में संविधान का अर्थ 'सीमित सरकार' से है अर्थात् सरकार पर कुछ विशेष प्रतिबन्ध होते हैं। संविधान वैधानिक नियमों, रीति रिवाजों और प्रथाओं का दस्तावेज है जिसकी परिधि में सरकार कार्य करती है।

संविधान की विशेषताएँ

संविधान की विशेषताओं का विषय अति महत्वपूर्ण पहलू माना गया है। क्योंकि इसका अध्ययन करने के पश्चात् किसी भी देश के राष्ट्रीय उद्देश्यों , कार्यों एवं कार्यक्रमों , परियोजनाओं का ज्ञान प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक सरंचना, सरकार की विचारधारा, प्राथमिकताएँ, कार्य प्रक्रिया और कार्य उपायों का पता चलता है। इसके अतिरिक्त राजनैतिक एवं प्रशासनिक स्वरूप तथा संस्कृति का ज्ञान भी मिल जाता है।

सुभाष कश्यप ने कहा है कि भारत का संविधान एक व्यापक दस्तावेज है, वह कई तरीकों से एक अद्भूत वस्तु है और इसे किसी विशेष मॉडल में फिट नहीं किया जा सकता। क्योंकि इसमें :–

1. कठोरता एवं लचीलापन दोनों पाए जाते हैं।
2. यह संघात्मक एवं सकात्मक तत्वों का मिश्रण है।
3. इसमें संसदीय एवं अध्यक्षात्मक व्यवस्थाओं के तत्व विराजमान हैं।
4. यह संसदीय सम्प्रभुता और न्यायिक सर्वोच्चता में सामंजस्य स्थापित करता है।

एम. वी. पायली ने संविधान की निम्न विशेषताएँ बताई हैः–

1. लोकप्रियता सम्प्रभुता
2. मौलिक अधिकार
3. राज्य नीति निर्देशक सिद्धांत
4. समाजवाद
5. धर्मनिरपेक्ष
6. न्यायिक स्वतन्त्रता
7. संघात्मक
8. मंत्रिमंडलीय सरकार

विभिन्न विचारकों के विश्लेषण के बाद संविधान की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार दिया जा सकता है :–

(i) विश्व में लम्बा संविधान

भारतीय संविधान की अदभुत विशेषता यह है कि यह सबसे लम्बा संविधान है 1950 में इसके लागू करने के समय इसमें 8 सूचियाँ और 395 धाराएँ थी। 2003 में हमारे संविधान में 12 सूचियाँ हो गई हैं। जबकि अमेरीका के संविधान में मूलतः 7 धाराएँ, आस्ट्रेलिया में 12 धाराएँ हैं।

1. इसमें विभिन्न वर्गों के लिए विशेष प्रावधान रखे गए हैं जैसे अनुसूचित जाति एवं जनजाति, पिछडा वर्ग, इसाई, एंग्लों– इण्डियन, भाषा वर्ग आदि।
2. इसमें नागरिकों के मौलिक अधिकारों और उन पर भी लगी सीमाओं आदि का विस्ता से वर्णन किया गया है।
3. इसमें संघीय सरकार उवं राज्यों के बीच वैधानिक , प्रशासकीय और वितीय शक्तियों के विभाजन का विस्तार से वर्णन किया गया है।
4. उत्तरी–पूर्वी राज्यों के लिए संविधान में विशेष प्रावधान रखे गए हैं।
5. इसमें राज्य नीति निर्देशक तत्व और मौलिक कर्तव्यों पर अलग–अलग अध्याय जोडे गए हैं।
6. इसमें आपातकालीन शक्तियों के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन किया गया है, आदि :

(ii) कठोरता और लचीलेपन में सन्तुलन : संविधान का स्वरूप संघात्मक होने के कारण इसे कठोर होना पड़ता है। परन्तु यह बात भी सत्य है कि अधिक कठोरता इसके अस्तित्व के लिए खतरनाक हो सकती है। इसलिए भारतीय संविधान में कठोर और लचीले तत्व विराजमान हैं। इंग्लैंड का संविधान सबसे लचीला संविधान माना जाता है। भारत का संविधान कठोर संविधान इसलिए है कि धारा 368 के तहत इसके कुछ प्रावधानों को संशोधित करने के लिए केन्द्र तथा राज्यों की संयुक्त मंजूरी चाहिए। जैसे राष्ट्रपति का चुनाव, सुप्रीम कोर्ट, केन्द्र तथा राज्यों में शक्तियों का बटँवारा आदि। इन सभी विषयों के लिए संसद के प्रत्येक सदन के हाजिर सदस्यों का बहुत या कुल सदस्यों का स्पष्ट बहुमत चाहिए। इसके साथ ही आधे से अधिक राज्यों का अनुमोदन होना भी जरूरी है। भारत का संविधान

लचीला इसलिए है कि इसके कई प्रावधानों को संशोधित करने के लिए सामान्य वैधानिक प्रक्रिया अपनाई जाती है। उदाहरणतया, राज्यों का पुनर्गठन , नए राज्यों का गठन, विधानपालिका के ऊपरी सदन को समाप्त करना, नागरिकता आदि।

पिछले 52 वर्षों में संविधान में 93 संशोधन इसके लचीलेपन का प्रमाण है। लेकिन साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि इसके मुलभूत ढाँचे में संशोधन नहीं किया जा सकता। जिसमें प्रजातन्त्र, संघात्मक एवं गणराज्य, धर्म निरपेक्षता, न्यायिक पुनर्निरीक्षण, स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष चुनाव आदि शामिल है।

(iii) आत्मा से सकारात्मक, स्वरूप से संघात्मक : भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की गई है। इसलिए इसे संघात्मक की बजाए 'संघ' शब्द का प्रयोग किया गया है। डी. एन. बनर्जी ने कहा है कि '' भारत का संविधान संघात्मक होते हुए भी एकात्मकता की ओर झुका हुआ है। ऐसा देश की एकता तथा अखण्डता को बनाए रखने के लिए किया गया है।' के. सी. वीहर ने भी इसे अर्ध–संघात्मक संविधान माना है। यहाँ पर केन्द्रीय संसद राज्यों के नाम, सीमा बदल सकती हैं और उन्हें समाप्त कर सकती है। संघ को किसी दशा में भंग नहीं किया जा सकता और न ही कोई राज्य अलग संविधान की माँग कर इससे अलग हो सकता है। संकटकालीन शक्तियाँ एकात्मक व्यवस्था का प्रमाण है। राज्यों के राज्यपाल के एजेन्ट के रूप में काम करते हैं। दूसरी और संविधान में संघात्मक व्यवस्था की विशेषता विराजमान है जैसे केन्द्र तथा राज्यों में शक्तियों का लिखित रूप में बँटवारा, केन्द्र तथा राज्यों का अलग प्रशासनिक क्षेत्राधिकार, दोनों के बीच विवाद होने की दशा में स्वतन्त्र न्यायपालिका का प्रावधान किया गया है।

(iv) संसदीय सरकार की स्थापना : भारत में अमेरीका की अध्यक्षात्मक व्यवस्था की जगह इंग्लैंड की संसदीय व्यवस्था अपनाई गई है। । इसके तहत् मन्त्रीमंडल अपने कार्यकलापों के लिए संसद के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। यदि मन्त्रीमंडल संसद का विश्वास खो देती है तो उसे सत्ता छोड़नी पड़ती है। यहाँ पर संसद की रचना में लोकसभा + राज्यसभा + राष्ट्रपति शामिल होता है। हालांकि राष्ट्रपति केवल नाम मात्र का मुखिया माना जाता है। जबकि प्रधानमंत्री और उसका मन्त्रीमंडल वास्तविक रूप से कार्यपालिका के कार्य सम्पन्न करता हैं।

(v) मौलिक अधिकार एवं राज्य नीति निर्देशक सिद्धांत : अमेरीका की भांति भारत में मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया है क्योंकि किसी भी प्रजातान्त्रिक समाज में नागरिकों के पास होना आवश्यक माना गया है। इन्हें भारत का अधिकार क्षेत्र (मैगना कार्य) कहा गया है। सरकार पर प्रतिबन्ध रखने के लिए मौलिक अधिकारों को सात श्रेणियों में बाँटा गया है, जैसे : (अ) समानता का अधिकार (ब) स्वतन्त्रता का अधिकार (स) शोषण के विरूद्ध अधिकार (द) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (क) संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (ख) निजी सम्पति का अधिकार (ग) संवैधानिक उपचारों का अधिकार। परन्तु सन 1976 में 42वें संशोधन के द्वारा निजी सम्पति के अधिकार को समाप्त कर दिया गया है। जो समाजवाद की ओर एक अग्रसर कदम माना गया।

परन्तु इन अधिकारों पर कुछ प्रतिबन्ध भी लगाए गए हैं जैसे नागरिकों को दी गई स्वतन्त्रता देश की सुरक्षा और सामान्य कल्याण को निरस्त नहीं कर सकती। भाषण की स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं है

कि हम दूसरों को गाली दे सकते हैं। कुल मिलाकर मौलिक अधिकार व्यक्ति के चहुँमुखी विकास के लिए अवसर प्रदान करते हें परन्तु दूसरे व्यक्ति के हितो की लागत पर नहीं।

इसी प्रकार संविधान में राज्य नीति निर्देशक तत्वों का प्रावधान किया गया है जिन्हें आर्थिक अधिकारों का नाम भी दिया गया है क्योंकि ये आर्थिक सत्ता के केवल कुछ पूंजीपतियों के हाथों में केन्द्रीयकरण के विरूद्ध हैं। आर्थिक शक्ति का समाज के विभिन्न वर्गों में प्रसार होना चाहिए।

इन सिद्धांतों के माध्यम से सरकार एवं इसकी विभिन्न संस्थाओं को कुछ निर्देश दिए जाते हैं कि वे कानून निर्माण प्रक्रिया में इनका ध्यान रखे। इनके द्वारा प्रशासन के लिए आचार–संहिता स्थापित की जाती है। जो उन्हें अपनी मर्जी से कार्य–प्रणाली में अपनानी चाहिए। ये सिद्धांत संविधान की प्रस्तावना में निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रेरणा प्रदान करते हैं।

इन सिद्धांतों में राज्य की विभिन्न क्रियाओं जैसे सामाजिक, आर्थिक, कानूनी , शैक्षणिक एवं अंतराष्ट्रीय समस्याओं को शामिल किया गया है। कुल मिलाकर ये सिद्धांत एक नए प्रजातान्त्रिक भारत की नींव रखते हैं, लोगों की न्यूनतम जरूरतों को उजागर करते हैं और कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना चाहते हैं।

मुख्य निर्देशक सिद्धांतों में (क) सामान्य कार्य के लिए समान वेतन (ख) सभी नागरिकों को जीवन निर्वाह के साधनों का समान अधिकार (ग) स्वास्थ्य संचरण और शोषण से सुरक्षा (घ) अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा का प्रयास (ड) ग्राम पंचायतों की स्थापना और विकास (च) कार्यपालिका ओर न्यायपालिका का पृथ्यकरण (छ) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को प्रोत्साहन आयरलैंड के संविधान से लिया गया है।

(vi) स्वतन्त्र न्यायपालिका और न्यायिक पुनर्निरीक्षण : भारत में अमेरीका के विपरीत सारे देश के लिए एकीकृत न्याय व्यवस्था की गई जिसके शिखर पर सर्वोच्च न्यायालय विराजमान है। इसके निर्णय देश के समस्त न्यायालयों पर बाध्य हैं। संघात्मक व्यवस्था होने के कारण केन्द्र तथा राज्यों के बीच उत्पन्न झगड़ों का निपटारा न्यायपालिका द्वारा किया जाता है। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का सरंक्षक कहा जाता है।

देश की विधानपालिका द्वारा और प्रशासनिक व्यवस्था द्वारा पारित कानूनों एवं आदेशों को उस समय असंवैधानिक घाषित किया जा सकता है यदि ये संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करते हों। इस प्रकार भारत की संसद इंग्लैंड की तरह सम्प्रभु नहीं है। जहाँ न्यायिक पुनर्निरीक्षण का अधिकार नहीं है। स्वतन्त्र न्यायपालिका का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य नागरिकों के मूल अधिकारों की सुरक्षा करना है।

(vii) सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार : संविधान की धारा 326 के तहत बिना किसी शैक्षणिक योग्यता, लिंग–भेद सम्पति, भाषा एवं जाति के भेदभाव के बिना सभी वयस्क व्यक्तियों को मतदान का अधिकार दिया गया है। ऐसा भारत की ज्यादातर जनता का अशिक्षित एवं गरीब होने के कारण किया गया। भारत में वयस्क मताधिकार इंग्लैंड और अमेरीका से ज्यादा व्यापक है। यहाँ आम जनता को सम्प्रभु माना गया है और वे ही सत्ता का स्त्रोत है। और उन्हें सरकार के प्रतिनिधि चुनने का अधिकार सौंपा गया है। अनुसूचित जाति एंव जनजातियों के लिए विधानमंडलों में स्थान आरक्षित किए गए हैं। आजादी से पहले प्रचलित साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया है।

(viii) धर्म–निरपेक्ष राज्य की स्थापना : 42वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में 'धर्म निरपेक्ष' शब्द जोड़ दिया गया है जिसका अर्थ है कि राज्य का अपना कोई धर्म–विशेष नहीं है। दूसरे शब्दों में जनता को किसी भी धम्र को अपनाने और उपासना करने की स्वतन्त्रता है धर्म के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव संविधान की धारा 15 के तहत् प्रतिबन्धित है। इसके ठीक विपरीत पाकिस्तान समेत कई अरब देशों ने अपने आप को इस्लामिक धर्म–पंथी घोषित कर दिया है। एलगजैन्डरोविज के अनुसार '' भारत एक धर्म–निरपेक्ष राज्य है जहाँ सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गई है।'' धार्मिक रूप से अल्पसख्यकों को अपनी इच्छानुसार शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार दिया गया है।

परन्तु यह स्पष्ट किया गया है कि कोई भी व्यक्ति अपने धर्म पालन के नाम पर दूसरों के धर्म का विरोध या अनादर न करे। वर्तमान एन. डी. ए. सरकार किसी न किसी स्वरूप में हिन्दुत्व का पक्ष लेकर धर्म निरपेक्षता पर प्रश्न चिन्ह लगा रही है।'' अब इसे एक राजनैतिक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है।

(ix) संकटकालीन प्रावधानों की व्याख्या : संकटकालीन परिस्थितियों का सामना करने के लिए संविधान में कुछ शक्तियों का वर्णन किया गया है जो भारत के राष्ट्रपति में निहित हैं। ये तीन प्रकार की हैं :–

(क) राष्ट्रीय आपातकाल : जब देश को युद्ध , बाहरी आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह का खतरा हो तो संविधान की धारा 352 के तहत राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की जा सकती है।

(ख) राज्यों में संवैधानिक संकट : जब राज्यों की सवैंधानिक मशीनरी फेल हो जाए अर्थात् राज्य का प्रशासन अंसवैधानिक गतिविधियों से चलाया जाए तो धारा 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है।

(ग) वित्तीय आपातकाल : जब किसी राज्य में दिन प्रतिदिन के प्रशासनिक संचालन के लिए वित्त संकट आ जाए तो संविधान की धारा 360 के तहत आपातकाल की घोषणा की जा सकती है।

(x) संविधान पर विदेशी प्रभाव की छाप : संविधान का निर्माण करते समय सभी श्रेष्ठ संविधानों की सहायता ली गई और उनसे लिए गए प्रावधानों की भारतीय परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार ढालने की कोशिश की गई। हमने मुख्यतया ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, स्विटरजरलैंड, आयरलैंड एवं दक्षिणी अफ्रीका के संविधानों से काफी प्रावधान उधार लिए।

संविधान का संसदीय स्वरूप और क्रियान्वयन नियम हमने ब्रिटेन के संविधान से लिए हैं। संविधान की प्रस्तावना, मूलाधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, संशोधन प्रक्रिया आदि पर अमेरीकी संविधान की छाप है राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत, राष्ट्रपति के चुनाव के लिए निर्वाचक मण्डल आदि पर आयरलैंड के संविधान का प्रभाव है। कनाड़ा के संविधान का असर 'संघ' शब्द तथा अवशेष शक्तियों का केंद्र तथा राज्यों के विवादों का निपटारा करने की व्यवस्था बहुत कुछ आस्ट्रेलिया के संविधान से मिलती है। राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ जर्मन संविधान की देन हैं।

(xi) एकल नागरिकता : हमारी नागरिकता केवल भारतीय है न कि राज्य स्तर पर कोई अलग नागरिकता है। अमेरिका में दोहरी नागरिकता प्रदान की गई है। लेकिन भारत में देश की एकता व अखंडता के परिपेक्ष में एक समान–शासन व्यवस्था का निरूपण किया गया है। नागरिकता विनियमन किया गया है। नागरिकता का विनियम करने का अधिकार केवल संघीय संसद को है, राज्यों को नहीं।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त समय परिवर्तन एवं जनता की आवश्कता के अनुसार संविधान अतिरिक्त विशेषताएत्र ग्रहण कर सकता है।

1.4.4 भारतीय संविधान की आलोचना

संविधान सभा के कई सदस्यों ने इसे पश्चिम की गुलामी पसन्द नकल का नाम दिया जो कि भारतीय दशाओं के अनुकूल नहीं थी। अन्य कुछ सदस्यों ने शंका जाहिर की थी कि संविधान लागू होने के कुछ वर्षों बाद बिखर जाएगा। संविधान की आलोचना की मुख्य बातें इस प्रकार हैः

1. जैनिंग ने कहा कि हमारा संविधान काफी लम्बा एवं पेचीदा है। और अन्य देशों के लिए गए प्रावधानों को अच्छी प्रकार नहीं चुना गया है
2. 1935 के अधिनियम की फोटो कापी : अम्बेडकर ने स्वयं स्वीकार किया था कि प्रारूप समिति ने अधिकतर भाग 1935 के अधिनियम से उठाया है। और ये प्रावधान मुख्यतया प्रशासनिक व्याख्या से सम्बन्धित है।
3. वकीलों के लिए स्वर्ग : संविधान की प्रारूप समिति में वकीलों का आधिपत्य होने के कारण इसमें कानूनी–दाव पेचों को अधिक महत्व दिया गया है। यह जनता को न्यायिक प्रक्रिया की ओर धकेलता है। और मुकद्दमेबाजी को बढ़ावा देता है जिसमें वकीलों के लिए ढेर सारा कार्य उत्पन्न हो जाता है। इसकी भाषा एवं प्रक्रिया कानूनी है।
4. गैर–गाँधीवाद पर आधारित : गाँधी जी ग्राम–स्वराज चाहते थे और उनका विकास माडल कुटीर एवं घरेलु उद्योगों पर आधारित था। वे मूल ईकाई स्तर पर योजना एवं कार्यक्रमों का निर्माण चाहते थे जिनमें आम जनता की भागीदारी हो। वे पश्चिमी विचारधारा और शासन तन्त्र के पक्ष में नहीं थे। हमारे संविधान में उनके प्रावधानों को कोई स्थान नहीं दिया गया।
5. पूर्ण केन्द्रीयकरण पर आधारित : संविधान में केन्द्र को शक्तिशाली स्थान दिया गया है और राज्यों की स्थिति काफी कमजोर एवं आश्रित की रखी गई है। योजना एवं वित्तीय प्रणाली केन्द्रीयकृत है।
6. अभारतीयों पर आधारित : प्राचीन भारतीय राजनीति का चरित्रण संविधान में कहीं भी नहीं मिलता। संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने इस बात ओर ध्यान दिलाया कि भारतीय प्रथाओं के स्थान पर हम अंगेजी बैंड को प्राथमिकता दे रहे हैं। जिन आदेशों पर भारतीय संविधान आधारित है वह भारतीय भावना से मेल नहीं खाते।

1.4.5 निष्कर्ष

इन आलोचनाओं के बाद भी यह कहा जा सकता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एशिया–अफ्रीका के आजाद हुए लगभग 150 देशों में से भारत से ही संसदीय प्रजातन्त्र सर्वाधिक सफल है। समय की आवश्यकता के अनुसार इसमें आवश्यक संशोधन किए गए हैं। बी. आर. अम्बेडकर का यह कथन सत्य है कि संविधान तो किसी देश को सरकारी तन्त्र प्रदान कर सकता है इसे प्रभावशाली तरीके से चलाना व्यक्तियों पर निर्भर करता हैं।

1.4.6 मुख्य शब्दावली

- संसदीय
- न्यायिक पुननिरिक्षण

- प्रभुसत्ता
- नागरिकता
- सामाजिक न्याय

1.4.7 अभ्यास हेतू प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. भारतीय संविधान का अर्थ से आप क्या समझते है तथा विचारकों ने भारतीय संविधान की कौन–कौन महत्वपूर्ण विशेषताएँ बताई है, वर्णन कीजिए।

1.4.8 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.

- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

1.5 संविधान की प्रस्तावना

1.5.1 परिचय

प्रत्येक देश के संविधान की अपनी एक प्रस्तावना होती है जिसके द्वारा संविधान निर्माण के उद्देश्य, समाज की आवश्यकताओं और सरकार की विचारधारा का पता चलता है। सी. जे. फ्रेडरिक ने कहा है कि प्रस्तावना के द्वारा जनमत प्रतिबिम्बित होता है और इसी से संविधान अपनी सत्ता को प्राप्त करता है। के. एम. मुन्शी ने प्रस्तावना को राजनीतिक जन्मपत्री का नाम दिया है। संविधान का निर्माण प्रस्ताव के साथ शुरू करना एक सर्वमान्य प्रथाप बन गई है। यहाँ तक संयुक्त राष्ट्र संघ के संविधान में भी प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं होती परन्तु जब संविधान की कोई धारा संदिगध है और उसका अर्थ स्पष्ट नहीं तो न्यायालय इसकी व्याख्या करते समय प्रस्तावना की सहायता ले सकते हैं। परन्तु केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने बेरूबारि मामले में दिये गए निर्णय को उतर दिया और कहा कि प्रस्तावना संविधान का अभिन्न अंग है और संविधान के उपबन्धों के निर्वाचन में इसका बड़ा महत्व है।

1.5.2 उद्देश्य

- संविधान की प्रस्तावना के अर्थ को जानना
- संविधान की प्रस्तावना की प्रमुख विशेषताओं को समझना।
- संविधान के मूल उद्देश्यों की गहनता को समझना।
- संविधान के लक्ष्यों को पहचानना।
- प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद के प्रवेश के कारकों का परीक्षण करना।

1.5.3 प्रस्तावना का अर्थ

इसका अर्थ प्रारम्भिक कथन से है जो किसी भी अधिनियम के मुख्य उद्देश्यों एवं जरूरतों को अभिव्यक्त करता है। सी. जे. अय्यर ने कहा है कि प्रस्तावना संविधान निर्माताओं के मन की कुंजी है। कि वे क्या करना चाहते थे। भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश गजेन्द्र गाडकर का कहना है कि प्रस्तावना संविधान के बुनियादी दर्शन का दस्तावेज है।

1.5.4 प्रस्तावना की ऐतिहासिकता

13 सितम्बर 1946 को जवाहर लाल नेहरू ने उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया जिसमें घोषणा की गई कि :–

(i) संविधान सभा भारत को सर्वप्रथम सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणतन्त्र बनाना चाहती है और इसका शासन चलाने के लिए एक संविधान बनाना चाहती है

(ii) भारत एक 'संघ' होगा।

(iii) केन्द्र तथा राज्यों का कार्य–क्षेत्राधिकार परिभाषित किया जाएगा।

(iv) केन्द्र तथा राज्य अपनी शक्ति आम जनता से प्राप्त करेंगे।

(v) देश के सभी व्यक्तियों को सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक न्याय, समान स्तर, अभिव्यक्ति, धार्मिक, व्यवसाय, संघ निर्माण आदि की स्वतन्त्रता होगी।

(vi) अल्पसंख्यकों , पिछड़े एवं अखण्डता को कायम करने का प्रयास किया जाएगा।

(vii) देश की एकता एवं अखंडता को कायम करने का प्रयास किया गया।

जो 1976 में 42वें संशोधन के पश्चात् इस प्रकार पढ़ी जा सकती है:–

'' हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न समाजवादी, धर्म–निरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उनके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति , विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्रदान करने के लिए तथा व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता एवं अखंडता सुनिशचित करने, बन्धुत्व को बढ़ाने के लिए दृढ़ संक्लप होकर अपनी इस संविधान सभा में 26 नवम्बर 1949 को इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं''।

महत्व

प्रस्तावना को संविधान की ' आत्मा' माना गया है। सर अर्नेस्ट बार्कर ने प्रस्तावना को देश की सामाजिक और राजनैतिक विचारधारा का नाम दिया है।

डी. डी. बसु के अनुसार '' प्रस्तावना में संविधान के आदर्श और आकांक्षाएँ निहित हैं, संविधान सभा के सदस्य ठाकुर दास भार्गव ने प्रस्तावना की प्रंशसा करते हुए कहा है कि ' यह संविधानका सबसे मूल्यवान अंग है, संविधान की आत्मा और संविधान का रत्न है, एम. बी. पायली ने कहा है कि 'प्रस्तावना भारतीयों के दृढ़ सक्लप का प्रतीक है जिसमें न्याय, स्वतन्त्रता , समानता, बन्धुत्व के विषय प्रमुख हैं।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना स्पष्ट रूप से तीन बातों पर प्रकाश डालती हैं :–

1. संवैधानिक शक्ति का स्त्रोत क्या है ?
2. भारतीय शासन व्यवस्था कैसी है?
3. संविधान के उद्देश्य या लक्ष्य क्या है?

1. संवैधानिक शक्ति का स्त्रोत : प्रस्तावना इन शब्दों से आरम्भ होती है '' हम भारत के लोग इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित तथा आत्मार्यित करते हैं।'' इन शब्दों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय जनता ने अपनी सम्प्रभुत्ता, इच्छा को इस संविधान के माध्यम से व्यक्त किया है। मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में प्रस्तावना पर अपने विचार प्रकट करते समय ये शब्द कहे थे, '' इस प्रस्तावना में सदन के प्रत्येक सदस्य की यह इच्छा निहित है कि संविधान अपना आधार, अपनी शक्ति और अपनी प्रभुसत्ता लोगों से प्राप्त करे।''

   किन्तु केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने बेरूबारी के मामले में दिये गये निर्णय को उलट दिया और यह निर्धारित किया कि कुछ आलोचकों का कहना है कि भारत के संविधान को लोगों का संविधान नहीं कह सकते। इसको न तो भारतीय जनता ने बनाया है और न ही स्वीकार किया था।

संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर ही नहीं हुआ था। और न ही ये प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुने गए थे। इसके अतिरिक्त संविधान सभा द्वारा बनाए गए संविधान को जनमत संग्रह द्वारा जनता ने स्वीकार नहीं किया था।

निसःदेंह आलोचकों के तर्कों में सच्चाई कुछ ही है, परन्तु इसे अधिक महत्व देना ठीक नहीं है। क्योंकि जिन परिस्थितियों में संविधान का निर्माण हुआ था उस समय न तो वयस्क मताधिकार था और न ही जनमत संग्रह। संविधान के बनने के दो वर्ष बाद ही संसद तथा राज्यों की विधानमण्डलों के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ था। संविधान सभा के लगभग सभी सदस्य चुने गए थे। यदि जनता के इन चुने हुए प्रतिनिधियों को यह संविधान स्वीकार न होता तो वे अवश्य ही नया संविधान तैयार करते। जनता भी नए संविधान की माँग कर सकती थी, परन्तु उन्होंनें ऐसी कोई माँग नहीं की। इस प्रकार प्रस्तावना यह संकेत है कि भारत का संविधान लोगों का संविधान है, बिल्कुल सही है। संवैधानिक शक्तियों का स्त्रोत लोग हैं।

2. भारतीय शासन व्यवस्था का स्वरूप : संविधान की प्रस्तावना में हमें भारत की शासन व्यवस्था के स्वरूप का भी पता चलता है। प्रस्तावना में भारत को प्रभुत्व–सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणराज्य बनाए जाने की घोषणा की गई हैं। 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में समाजवादी व धर्म निरपेक्ष शब्दों को अंकित किया गया है, अतः भारतीय शासन व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :–

सम्प्रभु राज्य :– प्रस्तावना में भारत को सम्प्रभु राज्य घोषित किया गया है। इसका अर्थ भारत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है अर्थात् वह किसी विदेशी सत्ता के अधीन नहीं है। यह सम्प्रभुता भारत की जनता में निहित है।

भारत 15 अगस्त, 1947 से पहले विदेशी सत्ता के अधीन था लेकिन आज भारत को स्वतन्त्र हुए 54 वर्ष बीत गए हैं। जब से लेकर अब तक लोगों ने फिर भी कुछ सुधार किए हैं। लेकिन आज किसी भी विदेशी शक्ति को इसकी विदेश–नीति तथा गृह–नीतियों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। यह ठीक है कि भारत आज भी राष्ट्रमण्डल का सदस्य है, परन्तु इसकी सदस्यता स्वतन्त्रता पर कोई बन्धन नहीं है। वैसे राष्ट्रमण्डल स्वतन्त्र राष्ट्रों का एक ऐच्छिक समुदाय हैं, जो पारस्परिक सहयोग तथा सहायता द्वारा अपनी सामान्य समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। प. जवाहर लाल नेहरू ने कहा था, '' भारत को क्षण के लिए भी राष्ट्रमण्डल में रहने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। हम अपनी इच्छा से राष्ट्रमण्डल के सदस्य बने हैं तथा इच्छानुसार उसे त्याग सकते हैं। कोई भी शक्ति हमें अपनी इच्छा के विपरीत उसका सदस्य बने रहने के लिए बाध्य नहीं कर सकती।''

(ii) इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत प्रभुत्व सम्पन्न देश हैः 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में समाजवादी शब्दों को जोड़ा गया था। प्रस्तावना में समाजवादी शब्द अंकित करने से सामाजिक तथा आर्थिक तत्व दृढ हो गए हैं। समाजवाद जीवन की एक विधि है। जिसको हमारे देश ने ग्रहण किया है। 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में समाजवादी शब्दों को जोडा गया था। प्रस्तावना में समाजवादी शब्द अंकित करने से सामाजिक तथा आर्थिक तत्व दृढ हो गए हैं। समाजवाद जीवन की एक विधि है। जिसको हमारे देश ने ग्रहण किया है। 42वें संशोधन द्वारा राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में कुछ समाजवादी सिद्धांत सम्मिलित किये हैं। उदारहण के लिए अनुच्छेद 39 (f) में यह लिखा गया है कि '' राज्य विशेष रूप से ऐसी नीति का निर्माण करें जिसके द्वारा बच्चों को स्वतन्त्रता तथा गौरव की अवस्थाओं में समग्र रूप से विकसित होने के लिए अवसर तथा सुविधाएँ प्राप्त हो सकें तथा बच्चों तथा युवकों की रक्षा हो सके।'' 39 ए निःशुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था की गई है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने समाजवादी समाज की स्थापना के लिए 20 सूत्रीय कार्यक्रम अपनाया और इसे लागू करने के लिए राज्यों को कड़े निर्देश दिए गए। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने एक भाषण में कहा था कि '' हम एक ऐसे समाज का निर्माण करने के लिए यत्न कर रहे हैं जिसमें लोगों को राजनीतिक निर्णय करने तथा आर्थि विकास में भाग लेने में पूर्ण अवसर प्राप्त होंगे। हम चाहेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति को गणना का एक अंक नहीं बल्कि एक विशेष व्यक्तित्व समझा जाए।'' इस प्रकार गरीबों व बेरोजगारों की समस्याओं को हल करने के लिए अनेक कदम उठाए।

(iii) भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य हैः 42वें संविधान संशोधन द्वारा प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्ष शब्द अंकित किया गया। धर्मनिरर्पेक्ष की धारणा संविधान में '' विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता'' पदावली में निहित थी। लेकिन अब किसी भी धर्म को विशेष नहीं माना जाना चाहिए। भारत बहुधर्मी राष्ट्र है। किसी को भी धर्म मानने का अधिकार है, कोई किसी भी धर्म को मान सकते हैं और न किसी दूसरे धर्म की आलोचना कर सकता है। लेकिन राज्य धर्म में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

(iii) भारत एक प्रजातान्त्रिक राज्य :संविधान के Preamble में भारत को लोकतन्त्रीय राज्य घोषित किया गया है। इसका अभिप्राय है कि शासन शक्ति किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष के हाथों में नहीं बल्कि समस्त जनता के पास है। लोग शासन चलाने के लिए अपने प्रतिनिधियों को चुनतें है और ये प्रतिनिधि अपने कार्यों के लिए समस्त जनता के प्रति उतरदायी होते हैं। भारत के प्रत्येक नागरिक को चाहे वह किसी भी धर्म, सम्प्रदाय तथा जाति से सम्बन्धित क्यों न हो सके सबको समान अधिकार प्राप्त हैं।

(iv) भारत एक गणराज्य : प्रस्तावना में भारत को लोकतन्त्र के साथ–साथ गणराज्य भी घोषित किया गया है। कुछ लोग कहते हैं कि लोकतन्त्र घोषित करने के बाद गणराज्य घाषित करना उचित नहीं हैं। लेकिन ये गलत है क्योंकि एक राज्य लोकतन्त्रीय तो हो सकता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह गणराज्य भी है। उदाहरणतया, इंग्लैंड और जापान प्रजातन्त्रीय राज्य तो हैं, परन्तु वे गणराज्य नहीं हैं। गणराज्य की प्रमुख विशेषता यह होती है कि राज्य का मुखिया कोई पैतृक राजा या रानी नहीं होता बल्कि जनता द्वारा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में चुना जाता है इस प्रकार भारत गणराज्य है।

न्याय

संविधान का उद्देश्य है कि भारत के सभी नागरिकों को न्याय मिले और जीवन के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक किसी भी क्षेत्र में नागरिकों के साथ अन्याय न हो। इस बहुमुखी न्याय से दो नागरिकों के जीवन का पूर्ण विकास सम्भव है और इसकी प्राप्ति लोकतन्त्रात्मक ढांचे से ही हो सकती है।

(i) आर्थिक न्याय – इससे अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आजीविका कमाने के समान अवसर प्राप्त हो तथा उसके कार्य के लिए उचित वेतन प्राप्त हो।

(ii) सामाजिक न्याय– इसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति के साथ धर्म, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए।

(iii) राजनीतिक न्याय : समानता प्रजातन्त्र का मूल आधार है समानता के बिना स्वतन्त्रता एक धोखा है। समानता और स्वतन्त्रता एक दूसरे की पूरक हैं तथा लोकतंत्र में साथ साथ चलती हैं। सभी व्यकितयों को समान अधिकार प्राप्त हैं। धर्म, जाति, लिंग, और रंग रूप के आधार पर कोई भेदभाव नहीं है। सब समान हैं। अनुच्छेद 14 में सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता तथा सुरक्षा प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 15 में राज्य किसी भी नागरिक के साथ रंग, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। अनुच्छेद 16 में सभी नागरिकों को अवसर की समानता प्रदान की गई है। अनुच्छेद 17 में छुआछूत को समाप्त कर दिया गया है। अनुच्छेद 18 में शिक्षा तथा सैनिक उपाधियों को छोड़कर अन्य उपाधियाँ समाप्त कर दी गई हैं।

(iv) बन्धुत्व : भारतीय संविधान की प्रस्तावना में बन्धुत्व की भावना को विकसित करने पर बल दिया गया है। साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयवाद, भाषावाद आदि सभी बुराईयों को समाप्त करना है। '' न्याय, स्वतन्त्रता और समानता के आधार पर निर्मित नए राष्ट्र का उद्देश्य यह था कि सभी यह अनुभव करें वे एक धरती के बच्चें हैं, उनकी मातृभूमि एक है तथा उनका एक ही भ्रातृभाव है।

(v) व्यक्ति गौरव को स्थापित करने का विश्वास :– Preamble में व्यक्ति के गौरव को बनाए रखने की घोषणा की गई है। स्वतन्त्रता से पूर्व अंग्रेजों ने भारतीयों के गौरव को मान्यता नहीं दी थी और भारतीयों के गौरव को समाप्त करने के लिए हर संभव प्रयास किया था। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीयों में गौरव बनाए रखने के लिए प्रस्ताव मं इस बात की घोषणा की गई। क्योंकि संविधान–निर्माता अच्छी तरह इस बात को समझते थे कि बिना गौरव अनुभव किए कोई राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता, इसलिए सभी व्यक्तियों को मौलिक अधिकार समान रूप से दिए गए हैं।

(vi) राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता की स्थापनाः अंग्रेजों की 'फूट डालों ओर शासन करो' की नीति के कारण भारत का विभाजन हुआ था, इसलिए संविधान निर्माता भारत की एकता को बनाए रखने के लिए बड़े इच्छुक थे, अतः संविधान की प्रस्तावना में राष्ट्र की एकता को बनाए रखने की घोषणा की गई। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भारत को धर्म–निरपेक्ष राज्य बनाया गया, सभी नागरिकों को भारत की नागरिकता प्रदान की गई। भारत के संविधान 18 में भारतीय भाषाओं को मान्यता दी गई । 42वें संशोधन द्वारा राष्ट्र की एकता के साथ अखण्डता शब्द जोड़ा गया।

1.5.5 प्रस्तावना में संशोधन

गोपालन बनाम मद्रास राज्य मामले में यह कहा गया कि प्रस्तावना जो भारत को एक प्रजातान्त्रिक संविधान प्रदान करती है, कानूनों की व्याख्या करते समय निर्देशित मान लेना चाहिए ओर धारा 21 के तहत बना कोई भी कानून यदि प्राकृति न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन करता है तो उसे अवैध करार दे दिया जाए। परन्तु उच्चतम न्यायालय के जजों की बहुमत पीठ ने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा कि धारा 21 के तहत राष्ट्र की एकता के साथ अखण्डता शब्द जोड़ा गया।

परन्तु गोपालन के मामले के बाद उच्चतम न्यायालय ने केशवानन्द बदली और खण्डपीठ के बहुमत जजों ने कहा कि प्रस्तावना को ध्यान में रखना चाहिए और धारा 368 के तहत संसद को संविधान के मौलिक ढांचे को संशोधित करने का अधिकार नहीं मिल पाया है। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तावना को संविधान का अंग माना और कहा कि इसके साथ खिलवाड नहीं किया जाना चाहिए।

1.5.6 निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना सर्वोतम रूप से लिखी गई है। यह संसार के अन्य संविधानों से बेहतर है जहाँ तक आदर्शों की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, इससे संविधान की आत्मा निवास करती है और

भारतीयों को एकता के सूत्र में बाँधने का निश्चय किया ताकि एक नए भारत का निर्माण किया जा सके। हमारे देश में न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व सर्वोपरि रहे हैं। संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने प्रस्तावना को संविधान का अमूल्य भाग माना है। इस प्रकार संविधान की प्रस्तावना समानता, राजनैतिक, नैतिक व धार्मिक मूल्यों का स्पष्टीकरण करती है जिन्हें संविधान प्रोत्साहित करता है।

1.5.7 मुख्य शब्दावली

- सवैंधानिक शक्ति
- धर्म निरपेक्ष
- गणराज्य
- प्रभुसता
- सामाजिक न्याय

1.5.8 अभ्यास हेतू प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रस्तावना से आप क्या समझते हैं? इसके ऐतिहासिक आधार का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. धर्म निरपेक्षता, समाजवाद और अखंडता की अवधारणा का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

1.5.9 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.

- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

1.6 मौलिक अधिकार

1.6.1 परिचय

किसी भी लोकतन्त्रीय देश का मुख्य उद्देश्य नागरिकों के व्यक्तित्व का उच्चतम विकास करना है और ऐसा करने के लिए आवश्यक हे उन्हें अधिक से अधिक अधिकार एवं सुविधाएँ दी जाएँ। लास्की ने कहा है कि किसी भी राज्य की पहचान उसके नागरिकों को दिए गए अधिकारों से की जा सकती है। क्योंकि ये मानवीय जीवन का अभिन्न अंग होते हैं। ये किसी भी देश में सामाजिक एवं आर्थिक क्रांति का कारण बनते हैं। 1215 में इंग्लैंड में जनता ने राजा जॉन को विवश किया कि वे 'मैगना कार्टा' पर हस्ताक्षर करें जिससे उनकी स्वतंत्रताएँ पुनः बहाल हो सकें। इसी प्रकार फ्रांस में 1789 में व्यक्ति के अधिकारों की घोषणा की गई परन्तु अमेरिका पहला राष्ट्र था जिसने सर्वप्रथम अपने संविधान में मौलिक अधिकारों को शामिल किया।

1.6.2 उद्देश्य

- मौलिक अधिकारों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझना।
- मौलिक अधिकारों की प्रमुख विशेषताओं को जानना।
- मौलिक अधिकारों के उचित प्रतिबन्ध को समझना।
- मौलिक अधिकारों की उपयोगिता को जानना।
- मौलिक अधिकारों के महत्व को समझना।

1.6.3 भारत में अधिकारों की उत्पति

सर्वप्रथम लास्की ने अधिकारों की अवधारणा को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है पहली बार भारतीय संविधान बिल, 1895 में अधिकारों की माँ की गई। इसके बाद 1917 और 1919 में कांग्रेस ने कई प्रस्ताव पारित किए और अंग्रेजों के समान नागरिक अधिकार एवं स्तर की माँग की गई। श्रीमती एनी बैसन्ट ने भारत के कॉमन वैल्थ बिल, 1925 के माध्यम से और मोती लाल नेहरू समिति ने अपनी रिपोर्ट, 1928 में सिफारिश की कि भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों को शामिल कर लिया जाएँ। परन्तु साईमन आयोग, 1930 ने इन्हें स्वीकार नहीं किया।

इसके पश्चात् कांग्रेस ने अपने संसदीय कराची सत्र, 1930 में और गांधी ने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में इन अधिकारों की मांग पुनः की। लेकिन संयुक्त संसदीय समिति 1934 ने इस मांग को फिर रद्द कर दिया ओर कहा कि ऐसा प्रावधान अभी किसी भी अधिनियम में विराजमान नहीं है। द्वितीय विश्व युद्ध के शुरू होते ही सभी बडे कांग्रेस नेताओं को जेल में डाल दिया गया। इसके बाद 1945 में 'सपरू रिपोर्ट' प्रकाशित हुई जिसमें सिफारिश की गई कि भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों को शामिल कर लिया जाए। इसके बाद संविधान सभा ने मौलिक एवं अल्प संख्यक अधिकारों के बारें में सिफारिश देने के लिए एक सलाहकार समिति का गठन किया जिसके अध्यक्ष सरदार पटेल थे। इस समिति ने एक उपसमिति का गठन किया जिसके अध्यक्ष जे0 पी0 कृपलानी थे। इस समिति द्वारा अधिकारों की सूची तैयार करते समय अमेरिका के' अधिकार पत्र' (बिल ऑफ राइटस)का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया और इसी कारण भारत के संविधान में दिए गए संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार अमेरीका के अधिकारों से काफी मिलते जुलते हैं।

1.6.4 परिभाषा

संविधान में मौलिक अधिकारों की कोई परिभाषा नहीं दी गई है। परन्तु यदि इसका शाब्दिक अर्थ लिया जाए तो इन्हें 'मौलिक' इसलिए कहा जाता है कि इन्हें देश के मौलिक कानून अथवा संविधान में शामिल किया गया है, ये न्यायसंगत है, जिन्हें न्यायालय लागू कर सकते हैं, ये सभी नागरिकों को प्राप्त है ये मौलिक इसलिए भी हैं कि सभी सार्वजनिक सत्ताएँ :– केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय सरकार उन्हें मानने के लिए बाध्य हैं। सुभाष कश्यप ने अपनी पुस्तक राजनीति कोष में कहा है कि इन अधिकारों को आसानी से संशोधित नहीं किया जा सकता।

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य के मामले में इन अधिकारों को नैसर्गिक और अप्रतिक्षेय माना है। इस मत की पुष्टि मेनका गांधी मामले में भी की गई है।

इस प्रकार मूल अधिकार वे आधारभूत अधिकार है जो नागरिकों के बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक ही नहीं वरन् अपरिहार्य हैं। इन अधिकारों के अभाव में व्यक्ति का बहुमुखी विकास संभव नहीं है।

संविधान में मूल अधिकारों के समावेश का उद्देश्य उन मूल्यों का सरंक्षण है जो एक स्वतंत्र समाज के लिए अपरिहार्य हैं। न्यायमूर्ति सप्रू ने इन अधिकारों के उद्देश्यों की व्याख्या इस प्रकार की हैः

1. भारत में रहने वाले नागरिकों को अधिकारों की सुरक्षा और समानता प्रदान करना।
2. नगरिकों के व्यवहार, न्याय और निष्पक्षता का एक निश्चित मापदण्ड निर्धारित करना।
3. विशेषाधिकारों को समाप्त करना।

संविधान द्वारा स्वतः निर्धारण

भारत में अमेरिका की भाँति मूल अधिकारों पर निर्बन्धनों के निर्धारण का कार्य न्यायपालिका पर नहीं छोड़ा गया है बल्कि ये स्वयं संविधान में ही निहित हैं। संविधान जहाँ अधिकारों के उपयोग की बात करता हे वहीं उनके उपयोग की सीमा भी निर्धारित करता है। प्रत्येक अनुच्छेद में उन आधारों का उल्लेख किया गया है जिनमें मूल अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाए गए हैं।

मूल अधिकारों के विशिष्ट लक्षण

1. ये न्याय संगत हैं।
2. ये अधिकार पूर्णतः निरपेक्ष नहीं हैं।
3. इन अधिकारों के उपयोग के सम्बन्ध में नागरिकों और विदेशियों में अन्तर किया गया है।

   जैसे कानून के समक्ष समानता, धार्मिक स्वतंत्रता आदि नागरिकों और विदेशियों के लिए समान हैं जबकि भाषण और सम्मेलन की स्वतंत्रता के साथ सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकार केवल नागरिकों के लिए हैं।
4. ये निलम्बित किए जा सकते हैं।
5. इनमें संशोधन किया जा सकता है।
6. नागरिक स्वतंत्रताओं पर अधिक जोर दिया गया है।
7. ये अधिकार प्राकृतिक नहीं है।

8. डी० डी० बसु के अनुसार सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये व्यक्तिगत अधिकारों केवल नागरिकों के लिए हैं।

9. सीमित सरकार की स्थापना पर बल दिया गया है।

1.6.5 भारतीय संविधान में मूल अधिकार

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों का वर्णन इसके तीसरे भाग में धारा 12 से 35 तक किया गया है। विभिन्न संवैधानिक संशोधनों के परिणामस्वरूप इनमें अन्य उपधाराएँ भी जोड़ी गई हैं। 44वें संशोधन द्वारा धारा 31 को निकाल दिया गया है जो निजी सम्पति के अधिकार से सम्बन्धित थी। इस प्रकार 7 की बजाए 6 मूल अधिकार बाकी बचे हैं। जो इस प्रकार हैंः–

1. समानता का अधिकार (धारा 14 से 18)
2. स्वतंत्रता का अधिकार (धारा 19 से 22)
3. शोषण के विरूद्ध अधिकार (धारा 23 से 24)
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (धारा 25 से 28)
5. सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (धारा 29 से 30)
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (धारा 32)

समानता का अधिकार (14–18)

श्री निवासन के अनुसार इस अधिकार का उद्देश्य नागरिकों को राज्य द्वारा प्रशासनिक और वैधानिक क्षेत्रों में किए जाने वाले भेदभाव पूर्ण व्यवहार से सुरक्षित करना है और सामाजिक असमानता के असंस्कृत रूप को कम करना है। इस अधिकार के माध्यम से भारतीय सीमा में रह रहे सभी व्यक्तियों को कानून के सामने माना गया है। इसकी उत्पति इंग्लैंड में हुई जिसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति को विशेषाधिकार न देना। कोई भी कानून से ऊपर नहीं है। भारत ने यह अधिकार आयरलैंड के संविधान से लिया है।

धारा 14 के क्षेत्र की व्याख्याक करते हुए भारत के उच्चतम न्यायालय में निम्न सिद्धांतों की स्थापना की गई हैः

1. समान सुरक्षा का अर्थ है कि समान परिस्थितियों में सबके साथ समान व्यवहार किया जाए और समान कानून लागू हों।
2. कानून बनाने के लिए राज्य तर्क संगत श्रेणियाँ बना सकता है।
3. कानून को चुनौती देने वाले का उतरदायित्व है कि वह प्रमाण सहित इसे साबित करे।

धारा 15 के तहत सामाजिक भेदभाव करने की मनाही की गई है। एम. बी. पायली ने कहा है कि धारा 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग के आधार पर किए जाने वाले भेदभाव की मनाही करता है परन्तु ये अधिकार धारा 14 से भिन्न केवल भारतीय नागरिकों को ही दिए गए हैं। नागरिकों की दुकानों, होटलों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों पर प्रवेश पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होगा। कुओं, तालाबों, स्नानघरों, सड़कों एवं सैर के स्थानों जिनकी राज्य कानून द्वारा अंशतः या पूर्णतया देखभाल की जाती है, किसी भी नागरिक के प्रवेश को अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता।

परन्तु यह धारा राज्य को स्त्रियों, बच्चों, पिछड़ी हुई जातियों के लिए विशेष प्रबन्ध से नहीं रोकती। उदाहरणतया यदि सरकार बच्चों एवं स्त्रियों के लिए अलग पार्क बनाती है और उसमें पुरूषों के प्रवेश पर रोक लगाती है तो इसे अनुचित भेदभाव नहीं माना जाएगा। संविधान सभा के सदस्य के० टी० शाह इस प्रावधान के कट्टर समर्थक थे।

धारा 16 के अनुसार सरकारी नौकरियों में सभी के लिए समान अवसर होंगे परन्तु सरकार निवास सम्बन्धी शर्तें लगा सकती है। पिछड़े वर्गों के लिए स्थान आरक्षित रख सकती है।

धारा 17 में अस्पृश्यता को समाप्त करने का प्रावधान रखा गया है। किसी भी व्यक्ति को अछूत समझना या व्यवहार करना कानूनी अपराध है। इसलिए 1955 में छूआछूत अपराध अधिनियम पास किया गया जिसके तहत ऐसे अपराध करने वाले व्यक्ति को छः महीने का कारावास या 50 रू० जुर्माना हो सकता है। 1976 में इसे संशोधित करके इन प्रावधानों को और कड़ा बना दिया गया है और इस अधिनियम का नाम बदलकर नागरिक अधिकार सुरक्षा अधिनियम रखा गया है। दण्ड प्राप्त व्यक्ति कोई भी चुनाव लड़ने अयोग्य माना जाता है।

धारा 18 के तहत उपाधियों का उन्मूलन कर दिया गया है ताकि जनता में कृत्रिम भेदभाव फैलाने की परिस्थितियों के ऊपर रहे।

धारा 18 (1) के अनुसार सेना या उन्मूलन या विद्या सम्बन्धी उपाधि के सिवाय और कोई खिताब राज्य प्रदान नहीं करेगा। 18 (2) के अनुसार भारत का नागरिक किसी विदेशी राज्य से खिताब प्राप्त नहीं करेगा। 18 (3) में प्रावधान है कि कोई भी विदेशी व्यक्ति जो भारत में किसी लाभ या विश्वास के पद नियुक्त है, भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना कोई उपाधि प्राप्त नहीं करेगा।

इस प्रकार धारा 18 निदेशात्मक है आदेशात्मक नहीं, क्योंकि इस की अवलेहना करने वाले व्यक्ति के खिलाफ संविधान में किसी दण्उ व्यवस्था का प्रावधान नहीं किया गया हैं। यह कार्य संसद पर छोड़ दिया गया है। भारत में दी जाने वाली उपाधियों के खिलाफ नवम्बर 1970 में संसद में एक बिल पेश किया गया जो पास नहीं हो सका। परन्तु 1977 में राष्ट्रपति के अध्यादेश द्वारा इन उपाधियों को बन्द कर दिया गया।

स्वतंत्रता का अधिकार (धारा 19–22)

पायली के अनुसार स्वतंत्रता का अधिकार मौलिक अधिकारों में सर्वाच्च स्थान रखता है और उन्हें ' स्वतंत्रता के अधिकार पत्र' कहा जाता है। 19 का अनुच्छेद सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके तहत निम्नलिखित व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं का वर्णन हैः–

1. विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।
2. सभा करने की स्वतंत्रता।
3. संघ बनाने की स्वतंत्रता।
4. भ्रमण करने की स्वतंत्रता।
5. आवास की स्वतंत्रता।
6. व्यापार, व्यवसाय, पेशा करने की स्वतंत्रता।

सातवीं स्वतंत्रता जो सम्पति के अधिकार से संबंधित थी उसे 44वें संविधान द्वारा 1978 से निरस्त कर दिया गया।

परन्तु इन स्वतंत्रताओं के प्रयोग पर कुछ प्रतिबन्ध लगाए गए हैं, जैसे भाषण देते समय राज्य में शान्ति एवं सुरक्षा, प्रभुसत्ता एवं अखण्डता, विदेशी के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध आदि को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार एवं नैतिकता, न्यायालय का सम्मान आदि भी मद्देनजर रखे जाने चाहिएँ। किसी भी व्यक्ति को मानहानि एवं हिंसा को प्रोत्साहन देने की छुट नहीं दी जा सकती। किसी सभा के आयोजन में यह आवश्यक है कि यह शान्तिपूर्ण एवं निशस्त्र हो।

धारा 20 के तहत अपराध की दोष–सिद्धि के विषय में सरंक्षण दिया गया है। (1) किसी भी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए तब तब दण्डित नहीं किया जा सकता जब तक यह सिद्ध नहीं किया जाए कि उसने अपराध करते समय किसी प्रचलित कानून का उल्लंघन किया है। (2) अपराध करने वाले व्यक्ति को उतने से अधिक दण्ड नहीं दिया जाएगा जो अपराध करने के समय प्रवृत्त कानून के अधीन प्रावधान है, (3)कोई भी व्यक्ति एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दण्डित नहीं किया जा सकता। (4) किसी भी अपराा में कोई अभियुक्त स्वयं अपने विरूद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

धारा 21 के तहत व्यक्तिगत स्वतंत्रता और जीवन की सुरक्षा का प्रावधान है। किसी भी व्यक्ति को उसके प्राण और दैनिक स्वाधीनता से वांछित नहीं किया जा सकता।

मेनका गाँधी मामला 1978 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जीवन का अर्थ है 'गौरवपूर्ण जीवन' न कि केवल 'अस्तित्व'। कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का अर्थ है कि यह तर्क संगत और उचित भी होनी चाहिए। इस मामले में अमेरिका में प्रचलित 'कानून की उचित प्रक्रिया' को भी मद्देनजर रखा गया और मेनका गाँधी के पासपोर्ट को बिना वजह जब्त करने को अवैध ठहराया गया। 1993 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस धारा में शिक्षा का अधिकार भी शामिल किया क्योंकि इसके माध्यम से गौरवपूर्ण जीवन संभव हो सकता है।

धारा 22 में बन्दीकरण तथा नजरबन्दी से बचाव की व्यवस्था की गई है। इसके अन्तर्गत बन्दी व्यक्ति को कुछ संवैधानिक अधिकार दिए गए हैं और निवारक नजरबन्दी के बारे में व्यवस्था है। जैसे (1) किसी भी गिरफ्तारी के कारण ये यथाशीघ्र अवगत किए बिना बन्दी बना कर नहीं रखा जा सकता है। (2) उसे अपनी पसन्द के वकील से परामर्श करने तथा उससे अपने पक्ष की सफाई दिलवाने के अधिकार से वांछित नहीं रखा जाएगा।(3) उसे गिरफ्तारी के 24 घंटे के अन्दर नजदीक के न्यायाधीश के सामने पेश किया जाएगा।(4) उसे न्यायालय की आज्ञा के बिना 24 घंटे से अधिक हिरासत में नहीं रखा जाएगा।

परन्तु ये अधिकार उन बन्दियों पर लागू नहीं होंगे जो विदेशी शत्रु राष्ट्र के साथ मिले हुए हैं और जिन्हें निवारक नजरबन्दी के तहत गिरफ्तार किया गया है।

निवारक (निरोध) : धारा 22 जो बन्दीकरण तथा नजरबन्दी के बचाव का प्रावधान करती है वही उपधारा (4) में निवारक निरोध का प्रावधान भी प्रदान करती है इसके तहत विधानमंडल को शक्ति दी गई है कि वह राज्य की सुरक्षा के कारणों से संबंधित मामलों के लिए निवारक निरोध कानून बना सकती है। भारतीय संविधान में इसकी कोई परिभाषा नहीं दी गई है। निवारक गिरफ्तारी दण्डाात्मक गिरफ्तारी से भिन्न हैं। क्योकि इसका उद्देश्य व्यक्ति को अपराध करने से रोकना या विरूद्ध करना है और इसमें किसी भी व्यक्ति को सन्देह के आधार पर गिरफ्तार किया जा सकता है। अमेरिका एवं इंग्लैंड में ऐसा कोई प्रावधान संविधान में शामिल नहीं किया गया है।

भारत में 1950 में निवारक निरोध अधिनियम बनाया गया। देश में अराजकतावादी तत्वों का जोर होने के कारण 1971 में राष्ट्रपति ने 'आन्तरिक सुरक्षा कानून (MISA) का अध्यादेश जारी किया। जनता सरकार ने 1979 में आवश्यक

वस्तु पूर्ति एवं काला बाजारी निरोध अध्यादेश जारी किया। इंदिरा सरकार ने 1983 में राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (NSA) अध्यादेश जारी किया। बाद में टाडा कानून घोषित किया गया। अभी हाल में ही राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक मोर्चा सरकार ने पोटा (POTA) अधिनियम, 2002 बनाया है जिसे लेकर राज्यों में काफी मतभेद एवं विरोध है।

लेकिन निवारक निरोध कानून के अन्तर्गत विरूद्ध किए गए व्यक्ति को 44वें संविधान संशोधन, 1978 द्वारा कुछ सरंक्षण प्रदान किए गए हैं जैसेः–

1. गिरफ्तारी का कारण जानने एवं अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का अधिकार।
2. एक सलाहकार बोर्ड द्वारा निवारक निरोधित व्यक्ति के मामले का पुनर्विलोकन करना।
3. शोषण के विरूद्ध अधिकार (23–24)

धारा 23 के तहत सभी प्रकार के बलात् श्रम और व्यक्तियों की खरीद–फरोक्त को निषिद्ध किया गया है। किसी भी व्यक्ति से उसकी इच्छानुसार कार्य करवाने की मनाही है।

धारा 24 के तहत 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को किसी भी कारखाने या खान में नौकर न रखने और किसी अन्य संकटमय नौकरी में न लगाने का प्रावधान है।

परन्तु राज्य को जनता के हितों के लिए अपने नागरिकों से आवश्क सेवा करवाने पर पाबन्दी नहीं है। राज्य सैनिक, विद्या तथा सामाजिक सेवा की व्यवस्था कर सकता है पर ऐसा करते हुए वह धर्म, मूलवंश, जाति अथवा श्रेणी के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।

धर्म स्वातंत्रय का अधिकार (25–28)

धारा 25 के तहत अन्तकरण तथा धर्म को अबाध रूप को मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता दी गई है। परन्तु राज्य किसी भी धर्म को मानव बलि देने की आज्ञा नहीं दे सकता। धारा 26 के तहत धार्मिक मामलों का प्रबन्ध करने की स्वतंत्रता दी गई है परन्तु ऐसा करते समय सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, तथा स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाएगा।

धारा 27 में किसी भी व्यक्ति को कोई ऐसा कर अदा करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता जिसको इकट्ठा करके किसी धर्म विशेष के विकास एवं संचालन हेतु व्यय किया जाए या किसी धार्मिक वर्ग विशेष के लिए खर्च किया जाए।

धारा 28 में सरकारी शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा पर रोक का प्रावधान है।

संविधान में ये सभी प्रावधान धर्मनिरपेक्ष राज्य की ओर इशारा करते हैं परन्तु विभिन्न राजनैतिक दलों और समूहों ने धर्मनिरपेक्ष शब्द की व्याख्या अपनी–अपनी सुविधानुसार की है। परन्तु भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने बम्बई मामले 1994 में कहा कि : राज्य को किसी धर्म के प्रति आक्रामक नहीं होना बल्कि सभी धर्मों के प्रति तटस्थ होना है, धर्म का सरकार एवं राजनैतिक दलों द्वारा राजनैतिक प्रयोग न करना। सर्वोच्च न्यायालय ने 1995 में बाबरी मस्जिद मामले में पुनः कहा कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं इसलिए उसके लिए सभी धर्म समान है।

परन्तु नरसिम्हाराव सरकार द्वारा 'नम्र हिन्दुत्व' और वाजपेयी सरकार द्वारा 'हिन्दुत्व' या हिन्दू राष्ट्र का कार्ड चुनावों में पेश करना उचित नहीं है।

सांस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (29–30)

इसके तहत अल्पसंख्यकों को हितों के सरंक्षण तथा शिक्षा संस्थाएँ स्थापित करने का मूल अधिकार प्रदान किया गया है।

धारा 29 के तहत अल्पसंख्यक नागरिकों को सांस्कृति एवं शैक्षणिक हितों के सरंक्षण की दो व्यवस्थाएँ हैं :– (1) भारत के राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों को अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति को बनाए रखने का अधिकार है।(2) राज्य द्वारा घोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाले किसी भी शिक्षा संस्थान में प्रवेश में धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता।

धारा 30 शिक्षा संस्थाओं की स्थापना एवं संचालन में अल्पसंख्यकों के अधिकारों के बारे में निम्न व्यवस्थाएँ करती हैः–

1. धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा–संस्थाओं की स्थापना और संचालन का अधिकार होगा।
2. शिक्षा संस्थाओं को सहायता देते समय सरकार किसी भी संस्था से धर्म या भाषा के आधार पर भेदभाव नहीं करेगी।

1974 में सर्वोच्च न्यायालय ने गुजरात सरकार द्वारा अल्पसंख्कों के शिक्षण–संस्थाओं पर प्रतिबन्धों को नकारते हुए कहा कि इन वर्गों को शिक्षण संस्थान स्थापित एवं संचालन करने का पूरा अधिकार है। 1928 में 44वें संविधान संशोधन द्वारा सम्पति का मौलिक अधिकार समाप्त किए जाने पर धारा 30 में भी संशोधन किया गया ताकि अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं की सम्पति को अनिवार्य रूप लेने के लिए कानून का निर्माण करते समय राज्य इस बात का ध्यान रखेगा कि इससे अल्पसंख्यकों के अधिकार पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़े।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार (32–35)

यह भारतीय संविधान का एक महत्वपूर्ण अंग है। अम्बेडकर ने इस अधिकार को संविधान की आत्मका तथा ह्रदय बताया है और इसके बिना संविधान शून्य हो जाएगा। यह अधिकार मौलिक अधिकारों के हनन के मामले में धारा 226 के तहत राज्य के उच्चतम न्यायालय में इसे चुनौती दे सकता है। इस उद्देश्य के लिए विभिन्न उपचारों का प्रावधान किया गया हैं। जैसेः–

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका
2. परमादेश याचिका
3. प्रतिषेध याचिका
4. अधिकार–पृच्छा याचिका
5. उत्प्रेषण याचिका

(1) बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका :– इसका शाब्दिक अर्थ है कि बन्दी बनाए गए व्यक्ति को न्यायालय में पेश करना ताकि कानूनी प्रक्रिया के हिसाब से उसके मामले का निपटारा किया जा सके। ऐसा हिरासत में लेने के 24 घंटे के अन्दर–अन्दर किया जाना चाहिए।

(2) परमादेश याचिका :– इसका अर्थ है किसी अधिकारी को कुछ करने का आदेश देना। यह आदेश उच्चतम न्यायालय

अथवा न्यायालय द्वारा दिया जा सकता है। उदाहरणतया यदि किसी व्यक्ति को सभी योग्यताएँ पूरी करने पर भर्ती कर लिया गया है तो उसे नियुक्ति पत्र दिया जाना चाहिए। यदि सम्बन्धित अधिकारी ऐसा नहीं करता तो वह व्यक्ति इस याचिका के माध्यम से न्यायालय जा सकता है।

(3) प्रतिषेध याचिका :– इसका अर्थ है रोकना अथवा मनाही करना। यह याचिका उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय द्वारा निम्न न्यायालय को जारी की जाती है कि वह अमुक मामले की कार्यवाही बन्द करे जो उसके क्षेत्राधिकार से बाहर है।

(4)अधिकार–पृच्छा याचिकाः– इसका अर्थ है अच्छी प्रकार सूचित करें। यह आदेश वरिष्ठ न्यायालय द्वारा निम्न न्यायालय को देता है कि वह किसी अमुक अभियोग को उसे हस्तांतरित करे। ऐसे क्षेत्राधिकार की कमी और दुरूपयोग के मामले में किया जाता है।

धारा 33 सेना के सदस्यों के प्रति ओर धारा 34 मार्शल लॉ लागू होने की स्थिति में धारा 32 के अपवाद हैं। धारा 35 में संविधान के मूल्य अधिकारों वाले भाग 3 के उपबन्धों को प्रभावी करने के लिए प्रावधानों का वर्णन किया गया है।

1.6.6 मूल्याँकन

मौलिक अधिकारों ने हमारे देश में राजनैतिक और सामाजिक जनतंत्र की स्थापना की है। नागरिकों को प्रदान की गई स्वतंत्रताएँ उनके व्यक्तित्व के विकास में मील का पत्थर साबित हुई हैं। फिर भी इन अधिकारों की कुछ कारणों से आलोचना की गई हैं जैसेः–

(1) ये अधिकार आर्थिक पक्ष पर जोर नहीं देते।

(2) ये अधिकार एक हाथ से दिए गए हैं तो दूसरे हाथ से वापिस ले लिए गए हैं।

(3)निवारक निरोध की व्यवस्था से इन अधिकारों का सार समाप्त होता जा रहा है।

(4)मौलिक अधिकारों की भाषा बड़ी जटिल एवं कठिन है और यह आम नागरिकों जो कि ज्यादातर अशिक्षित है, की समझ से बाहर है।

(5)समानता का अधिकार होते हुए भी राष्ट्रपति, मन्त्रियों, विधानमंडल के सदस्यों और राजदूतों के पास विशेषाधिकार हैं।

1.6.7 निष्कर्ष

अन्त में कहा जा सकता है कि इस अधिकारों के होते हुए भी समाज में मूलभूत परिवर्तन नहीं हो पाए हैं। आज जाति, धर्म, लिंग के आधार पर खुले आम भेदभाव किया जाता है। महिलाओं को द्वितीय दर्जे का नागरिक माना जाता है। आजादी के 55 साल बाद भी अछूतों की हालत दयनीय है। देश की एक–तिहाई जनता गरीबी की रेखा पर बसर करती है। लगभग 2 करोड़ बच्चे बाल मजदूरी करते हैं। धार्मिक एवं जातिगत हिंसा बढ़ रही है।

इस सबका कारण है कि मौलिक अधिकारों को व्यवहार में लाने के लिए नागरिकों को शिक्षा एवं प्रशिक्षण चाहिए। धन का एकत्रण कुछ निजी हाथों में नही होने देना चाहिए। सत्ता में धनी लोग बैठे हैं जो अपने हितों को बढ़ावा देते हैं। जरूरत है 'अवसर' की जब स्वतंत्रता को वास्तविक जामा पहनाया जाए और ऐसी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संस्थाएँ स्थापित की जाएँ जो मजदूर एवं किसानों को गरीबी, अज्ञानता एवं बीमारी से लड़ने में मदद करें।

1.6.7 मुख्य शब्दावली

- समानता
- स्वतंत्रता
- संवैधानिक उपचार
- नजरबंदी
- उत्प्रेषण

1.6.8 अभ्यास हेतू प्रश्न

दीर्घ उतरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान में अंकित मौलिक अधिकारों से आप क्या समझते हैं ?
2. भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों की विशेषताओं और महत्व का वर्णन कीजिए।
3. भारतीय संविधान के 42वें संविधान संशोधन के द्वारा किए गए मौलिक अधिकारों का विश्लेषणात्मक व्याख्या कीजिए।

1.6.9 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.

- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

1.7 मौलिक कर्तव्य

1.7.1 परिचय

अधिकार तथा कर्तव्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरे की कल्पना तक नहीं की जा सकती है। लोकतंत्रीय शासन–व्यवस्था की सफलता इस बात पर निर्भर है कि नागरिक जहाँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों, वहाँ वे अपने कर्तव्यों का पालन भी उतरदायित्व के साथ पूरा करें। अधिकतर लोकतंत्रीय राज्यों, जैसे ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरीका, फ्रांस आदि राज्यों के संविधानों द्वारा नागरिकों के कर्तव्यों का उल्लेख नहीं किया गया है। परन्तु वहँ नागरिक शत–प्रतिशत रूप से साक्षर तथा शिक्षित हैं। इस कारण वहाँ के नागरिक जहाँ अधिकारों के प्रति जागरूक हैं वहाँ उतने ही कर्तव्यपरायण भी हैं।

साम्यवादी विचारधारा के राज्यों में, जैसे पूर्व सोवियत संघ, चीन आदि के संविधानों में निश्चित रूप से नागरिकों के मौलिक अधिकारों के साथ कर्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है।

1.7.2 उद्देश्य

- मौलिक कर्तव्य की प्रकृति एवं उसके अर्थ को जानना।
- संविधान में मौलिक कर्तव्यों के समावेश को समझना।
- मौलिक कर्तव्यों के महत्व को जानना।

1.7.3 भारतीय संविधान में मौलिक कर्तव्यों की व्यवस्था

भारत का जो संविधान–सभा द्वारा निर्मित करके 26 जनवरी, 1950 को कार्यान्वित किया गया था, उसमें मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख नहीं था। भारत जब स्वतंत्र हुआ था उस समय देश की जनता का एक बड़ा भाग निरक्षर था उनको साक्षर बनाने का प्रयत्न जारी था। भारत जैसे नये लोकतंत्र के लिए यह आवश्यक था कि जहाँ संविधान द्वारा नागरिकों को मौलिक अधिकार दिए गए हैं वहाँ नागरिकों के मौलिक कर्तव्य भी निशचित किए जाएँ। इसी उद्देश्य की पूर्ति संविधान के 42वें संशोधन द्वारा 1976 में की गई। संविधान के भाग चार में 51–A के अनुसार 10 मौलिक कर्तव्य भारतीय नागरिकों के लिए निश्चित किए गए हैं। ये मौलिक कर्तव्य इस प्रकार हैं:

- भारतीय संविधान की पालना करना तथा उसके आदर्शों , संस्थानों, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान का सम्मान करना।
- स्वतंत्रता संग्राम के दौर में जिन आदर्शों को अपनाकर काम लिया गया था, जिनसे प्रेरणा मिली थी, उन पर चलना।
- भारत की प्रभुत्ता, एकता और अखण्डता का समर्थन तथा सुरक्षा करना।
- देश की सुरक्षा करना तथा समय आने पर राष्ट्रीय सेवा के लिए तैयार रहना।
- धार्मिक, भाषायी और प्रादेशिक या वर्गीय विभिन्नताओं को त्याग कर भारत के सारे लोगों में मेल–मिलाप तथा बन्धुता की भावना को विकसित करना तथा स्त्रियों की प्रतिभा को हीन करने वाली प्रथाओं का त्याग करना।

- अपनी मिली–जुली संस्कृति की सम्पन्न परम्परा का सम्मान करना और उसे सुरक्षित रखना।
- वनों, झीलों, नदियों और वन्य जीवन जैसे प्राकृतिक वातावरण को उन्नत करना और उनकी रक्षा करना तथा जीव –जन्तुओं के प्रति दया रखना।
- वैज्ञानिक प्रवृति, मानवता तथा अन्वेषण और सुधार की भावना को विकसित करना।
- सार्वजनिक सम्पति की रक्षा करना और हिंसा को त्यागने का प्रण करना।

  व्यक्तिगत तथा सामाजिक कार्य–कलापों के क्षेत्र में कुशलता का प्रयत्न करना जिससे कि राष्ट्र उच्चतम उपलब्धियों के शिखर पर पहुँच सके।''

1.7.4 मौलिक कर्तव्यों की व्याख्या

मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख संविधान के 51–A अनुच्छेद में किया गया है। जिन दस कर्तव्यों का वर्णन किया गया है उनको स्पष्ट करने के लिए उनकी व्याख्या आवश्यक है।

1. भारतीय संविधान का पालन करना तथा उसके आदर्शों, संस्थानों, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय ज्ञान का सम्मान करना– किसी भी राष्ट्र का सबसे अधिक पवित्र दस्तावेज उस राज्य का संविधान होता है। भारत की संविधान सभा द्वारा जो संविधान निर्मित किया गया, वह भारतीय जनता के लिए एक बहुत ही पवित्र दस्तावेज है। भारत के संविधान सभा द्वारा जो संविधान निर्मित किया गया है। यह संविधान भारतीयों को एक लम्बे स्वतंत्रता आन्दोलन के बाद प्राप्त हुआ था। इसके द्वारा जहाँ लोकतन्त्रीय संस्थाओं की स्थापना हुई है, वहाँ नागरिकों को स्वतंत्रताएँ तथा सामाजिक और आर्थिक न्याय दिलाने की व्यवस्था भी संविधान द्वारा की गई है। नागरिकों का हित इसी बात में है कि वे संविधान के आदर्शों और उसकी संस्थाओं का पालन करें।

   राष्ट्र का ध्वज और राष्ट्रीय गान राष्ट्र के प्रतीक है। प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह राष्ट्रीय ध्वज का सम्मान करे। इसके साथ ही राष्ट्रीय गान का भी उचित आदर करे। इनके आदर करने से राष्ट्र का ही एक अंग है।

2. स्वतंत्रता संग्राम के दौर में जिन आदर्शों को अपना काम किया गया था और जिनसे प्रेरणा मिली थी उनका पालन करना– भारतीयों को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए एक लम्बे समय तक संघर्ष करना पड़ा था। इस संघर्ष के दौरान जहाँ ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कुछ आदर्श निश्चित किए गए थे, वहाँ स्वतंत्र भारत के नव–निर्माण के लिए भी कुछ आदर्श निश्चित किए गए थे। ये आदर्श भारत की धरोहर है। इन आदर्शों में सत्य, अंहिसा, संवैधानिक साधन, लोकतंत्र, धर्म–निरपेक्षता, बंधुता, राष्ट्रीय एकता प्रमुख आदि हैं। प्रत्येक भारतीय नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह इन आदर्शों को अपनाए और उन्हें अपने जीवन का अंग बना ले जिससे कि राष्ट्र की धरोहर सुरक्षित बनी रह सकें।

3. भारत की प्रभुसता, एकता और अखण्डता का समर्थन तथा रक्षा करना– भारत एक राष्ट्र है। राष्ट्र की प्रभुसता, एकता और अखण्डता की सुरक्षा करना प्रत्येक नागरिक का पावन कर्तव्य है। स्वतंत्र भारत के नागरिक का कर्तव्य है कि राजनैतिक, सामाजिक या आर्थिक क्षेत्र में कोई ऐसा कार्य न करे जिससे वह देश–द्रोही कहा जाए और उसके कार्यों से देश की अखंडता को खतरा पैदा हो। उदाहरण के लिए

उग्रवादी, चाहे वे पंजाब में हो या कश्मीर में अथवा उतर–पूर्वी राज्यों में, जो हिसांत्मक गतिविधियाँ कर रहे हैं उनसे देश की एकता और अखण्डता का खतरा पैदा हो रहा है। इसलिए प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह राष्ट्र विरोधी तत्वों का सरकार द्वारा दमन कराने में अपना पूरा सहयोग दे।

4. देश की सुरक्षा करना तथा समय आने पर राष्ट्रीय सेवा के लिए तैयार रहना– भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह देश की सुरक्षा करना अपना सबसे महत्वपूर्ण कार्य समझे। राष्ट्र की सुरक्षा में ही नागरिक की सुरक्षा है। यदि राष्ट्र सुरक्षित है तो नागरिक भी सुरक्षित है। सुरक्षित राज्य में ही नागरिक अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। व्यक्ति के विकास से राज्यों के सभी लोगों का विकास होता है। इसलिए नागरिक का कर्तव्य है वह देश की सुरक्षा सम्बन्धी संस्थाओं, और अमेरिका में तो सैनिक सेवा अनिवार्य है परन्तु भारत में नहीं है। भारतीय नागरिकों का कर्तव्य है कि युद्ध की स्थिति में सेना या उससे संबंधित संस्थाओं में भर्ती होकर राष्ट्र की रक्षा के लिए तैयार रहें।

5. धार्मिक, भाषायी और प्रादेशिक या वर्गीय विभिन्नताओं को त्याग कर भारत के सारे लोगों में मेल–मिलाप तथा बन्धुता की भावना को विकसित करना तथा स्त्रियों की प्रतिभा को हीन करने वाली प्रथाओं का त्याग करना (To Promote harmony and spirit of common brotherhood amongst all the people of India transcending religious, linguistic and regional or sectional diversities; to renounce practices derogatory to the dignity of women)- भारत एक विशाल देश है जिसकी वर्तमान जनसंख्या 86 करोड़ से अधिक है। इस विशाल नज समूह में विभिन्न धर्मों, संस्कृति और सभ्यताओं, विभिन्न भाषाओं के लोग निवास करते हैं। देश की एकता और अखण्डता तथा संविधान के निश्चित आदर्शों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि सभी लोगों में बंधुता की भावना पैदा हो। इससे देश की एकता मजबूत होगी और राष्ट्र का विकास संभव हो सकेगा। ब्रिटिश शासन की नकारात्मक विरासत 'साम्प्रदायिकता' अब भी भारत के लिए नासूर बनी हुई है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक नागरिक धर्म–निरपेक्षता की भावना में आस्था रखते हुए सभी लोगों के साथ भाईचारे से रहें।

   भारत में लोग परम्परावादी और रूढ़िवादी हैं। आधुनिकीकरण के प्रति उनकी प्रवृति कम विकसित हुई है। इसी कारण पुरूष समाज महिला समाज को हीन समझता है। इसलिए विशेष रूप से पुरूष वर्ग का यह कर्तव्य है कि दहेज प्रथा, सती प्रथा, बाल–विवाह प्रथा आदि को त्याग कर महिलाओं का विकास किया जाए।

6. अपनी मिली–जुली संस्कृति की सम्पन्न परम्परा का सम्मान करना और उसे सुरक्षित रखना (To Value and Preserve the Rich Heritage of our Composite Culture) – भारत एक प्राचीन देश है जिसकी संस्कृति में महान् आदर्शों का सम्मिश्रण है। इस संस्कृति का प्रमुख आधार दूसरों के विचारों के प्रदि उदारता और सहनशीलता है। भारत में प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक अनेक विदेशी लोग भारत में आये और बस गए। उनकी अपनी अलग संस्कृति थी जो भारतीय संस्कृति में मिलकर एक मिश्रित संस्कृति बन गई है। जिसे भारतीय विरासत कहा जा सकता है। प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह अपनी इस मिश्रित संस्कृति को सुरक्षित रखे।

7. वनों, झीलों, नदियों और वन्य जीवन जैसे प्राकृतिक वातावरण को उन्नत करना और उनकी रक्षा करना

तथा जीव–जन्तुओं के प्रति दया करना। (To Protect and Improve the Natural Environment Including Forest, Lakes, Rivers and to have Comapassion for Living Creatures)- प्रकृति ने भारतवासियों को प्राकृतिक सम्पदा बहुत बड़ी मात्रा में प्रदान की है, जो हमारे जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रकृति ने हमें वन, झीलें, नदियाँ, पहाड़ जंगली जानवर दिए हैं। प्रकृति का यह वातावरण मानव जीवन के वह जहाँ जंगलों का विनाश न करे वहाँ झीलों और नदियों का सदुपयोग करे तथा जंगली जानवरों को किसी भी रूप में हत्या न करे।

8. वैज्ञानिक प्रवृति , मानवती तथा अन्वेषण और सुधार की भावना को विकसित करना (To Develop the Scientific Temper; Humanism and the Spirit of Inquiry and Reform)- मनुष्य समाज का विकास मनुष्य की चिन्तनशील प्रवृति के कारण हुआ।खेद है कि भारत की जनसंख्या का एक विशाल भाग रूढ़िवादी होने के कारण अन्धविश्वासी, रीति–रिवाजों और परंपराओं का शिकार है। सामाजिक जीवन में इतनी अधिक कुरितियाँ है जिसके कारण सामाजिक विकास कुंठित हो रहा है। सामाजिक विकास के साथ ही राष्ट्र का विकास संभव हे। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्यों के सोचने का ढंग तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक हो। तभी सामाजिक कुरीतियाँ दूर हो सकती हैं और समाज में सुधार हो सकता है। यह तभी संभव हो सकता है जब कि प्रत्येक नागरिक अपने दृष्टिकोण को तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक बनाए।

9. सार्वजनिक सम्पति की रक्षा करना और हिंसा को त्यागने का प्रण करना (To Safeguard Public Property and to Adjure Violence)- नागरिक जिसे सार्वजनिक सम्पति समझता है, वास्तव में वह सम्पति उसकी भी है। राष्ट्र की सम्पति में प्रत्येक नागरिक का भाग है। इसलिए प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि जिस प्रकार वह व्यक्तिगत सम्पति की रक्षा करता है उसी प्रकार सार्वजनिक सम्पति की रक्षा करे। हड़ताल और प्रदर्शन नागरिकों का अधिकार है परन्तु हड़तालों के समय रेलगाड़ी, बसों सरकारी इमारतों आदि को कभी भी हानि नही पहुँचानी चाहिए, क्योंकि इनकी हानि उसकी अपनी हानि होती है। खेद के साथ कहना पड़ता है कि हड़तालों के समय विशेष रूप से विद्यार्थी लोग छोटी सी बात पर उतेजित होकर सार्वजनिक सम्पति को हानि पहुँचाने लगते हैं। दूसरे, कभी–कभी छोटी सी बात पर दंगे हो जाते हैं और वे दंगे हिसां का रूप ले लेते हैं। ऐसी हिंसक गतिविधियों से समाज का वातावरण दूषित होता है। इसलिए यह नागरिक का मौलिक कर्तव्य है कि वह सार्वजनिक सम्पति की रक्षा करे और हिंसा की प्रवृति न अपनाए।

10. व्यक्तिगत तथा सामाजिक कार्यकलापों के क्षेत्र में कुशलता का प्रयत्न जिससे कि राष्ट्र उच्च्तम उपलब्धियों के शिखर पर पहुँच सके। (To strive Towards Excellence in all Spheres of Individual and Collective Activity, so that the Nation Constantly Rises to Higher Levels of Endeavour and Achievement) – किसी भी राष्ट्र का विकास नागरिक की दो प्रमुख भावनाओं पर निहित है। ये दो भावनाएँ हैं– कर्तव्य– परायणता और अपने कार्य को कुशलतापूर्वक करना। भारत देश के नव–निर्माण के लिए आवश्यक है। कि प्रत्येक नागरिक अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक उतरदायित्व को कर्तव्य– परायण और कुशलता के साथ पूरा करे। व्याख्या के रूप में, नागरिक जो व्यापारिक क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं वे जनता को वस्तुएँ उचित दाम पर दें तथा चोर बाजारी या मुनाफाखोरी न करें।

उद्योगपति अधिक से अधिक उत्पादन करते हुए, मजदूरों को उचित मजदूरी दें जिससे निर्यात बढ़े और विदेशी मुद्रा कमाई जा सके। इसी प्रकार व्यावसायिक क्षेत्र में वकील, डॉक्टर, शिक्षक व वैज्ञानिक, सरकारी कर्मचारी भी अपना–अपना उतरदायित्व पूरा करें। तभी भारत एक महान राष्ट्र बन सकता है।

यद्यपि संविधान के अनुच्छेअ 51–A में जोड़े गए मौलिक कर्तव्यों के पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है परन्तु बहुत से ऐसे कर्तव्य है। जिनका उल्लंघन दण्डनीय है, जैसे राष्ट्र विरोधी कार्य। अंततः यह कहा जा सकता है कि मौलिक कर्तव्यों का भारतीय नागरिकों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

1.7.5 मौलिक कर्तव्यों की आलोचना (Criticism of Fundamental Duties)

भारतीय संविधान में 51–A के अनुच्छेद द्वारा जिन मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है, उनके पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है। इस कारण मौलिक कर्तव्यों के विषय में भाषा आदि के कारण इनकी विद्वानों ने निम्न आधारों पर आलोचना की हैः

1. मौलिक कर्तव्य केवल नैतिक कर्तव्य हैं (Fundamental Rights are only Moral Rights) – संविधान में वर्णित मौलिक कर्तव्य नैतिक कर्तव्य हैं। जिस प्रकार नैतिक कर्तव्यों के पीछे कानूनी शक्ति नहीं होती और कोई भी व्यक्ति उनकी आसानी से अवलेहना कर सकता, इसी प्रकार मूल कर्तव्यों के पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है। इसका अर्थ यह है कि यदि कोई नागरिक मूल कर्तव्यों की अवलेहना करता है तो उसे इन्हें मानने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। मूल कर्तव्यों के द्वारा नागरिकों को कुछ कार्य करने के आदेश तो दिए गए, परन्तु उनको कार्यान्वित करने की कोई कानूनी व्यवस्था नहीं की गई। आलोचकों का सुझाव है कि यदि मूल कर्तव्य संविधान में रखे ही गए हैं तो इनके पीछे कानूनी शक्ति अवश्य होनी चाहिए थी। मौलिक अधिकारों के संबंध में जो समिति स्वर्ण सिंह की अध्यक्षता में नियुक्त की गई थी उसने यह सुझाव दिया था कि संसद के कानून द्वारा यह व्यवस्था की जाए की जो भी नागरिक मौलिक कर्तव्यों का उल्लंघन करे उसे दण्ड दिया जाए। परन्तु यह सुझाव अभी तक लागू नहीं किया गया है।

2. औचित्यता के आधार पर आलोचना– भारत जैसे लोकतंत्रीय राज्य के संविधान में मौलिक अधिकारों का होना औचित्य पूर्ण हैं। इस तरह के कर्तव्यों का उल्लेख तो केवल साम्यवादी राज्यों के संविधानों में ही किया जाता है। वहाँ नागरिकों को केवल कर्तव्यों के ही पालन करने होते हैं। ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका आदि लोकतंत्रीय राज्यों के संविधानों में जब मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख नहीं किया गया है तो भारत के संविधान में भी मौलिक अधिकारों की रचना कोई औचित्य नहीं रखती।

3. मौलिक अधिकारों का संविधान में देरी से नियंत्रण (Delayed in Inclusions of Fundamental Duties in the Constitution)- आलोचकों ने मौलिक कर्तव्यों की इस आधार पर आलोचना की है कि इनको संविधान में बहुत देरी में रखा गया है। यदि इनको मूल संविधान में रखा जाता है तो लोगों में अधिक कर्तव्य परायणता की भावना पैदा हो जाती।

4. कर्तव्यों का अस्पष्ट होना (Duties are Vague)- मौलिक कर्तव्यों में कुछ कर्तव्य ही अस्पष्ट है जिसके कारण साधारण लोग उनको नहीं समझ सकते। उदाहरण के लिए, संविधान में आदर्शों के प्रति आदर करना एक कर्तव्य है। परन्तु संविधान के क्या आदर्श है और किस प्रकार उनका आदर किया जाए– यह

स्पष्ट नहीं किया गया। इसी प्रकार दृष्टिकोण में वैज्ञानिकता, सुधार की भावना का विकास करना आदि ऐसे कर्तव्य हैं जिनका अर्थ लोग भिन्न–भिन्न लगा सकते हैं। इससे कर्तव्यों की अस्पष्टता ज्ञात होती है।

5. मौलिक कर्तव्यों में कुछ कर्तव्यों का अभाव (Absence of Some Duties) –संसद के सदनों में जब 42वें संशोधनों के मौलिक कर्तव्यों के अनुच्छेद के विषय में वाद–विवाद हो रहा था तो संसद सदस्यों ने सुझाव दिया कि अनिवार्य मत, अनिवार्य शिक्षा, परिवार नियोजन आदि अन्य विषयों को भी मूल कर्तव्यों में निश्चित किया जाए। इस प्रकार मौलिक कर्तव्य अपूर्ण दिखाई देते हैं।

6. मौलिक कर्तव्यों को मौलिक अधिकारों के अध्याय में न रखना (No inclusion of Fundamental Duties with Fundamental Rights)- आलोचकों ने मौलिक कर्तव्यों की इस आधार पर भी आलोचना की है कि इनको मौलिक अधिकारों के साथ रखना चाहिए था जबकि वे राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांतों की तरह न्याय–संगत नहीं है।

स्पष्ट है कि मौलिक कर्तव्य भले ही नैतिक नियम हो परन्तु उनका अपना ही महत्व है।

1.7.6 मौलिक कर्तव्यों का महत्व (Importance of Fundamental Duties)

संविधान में मौलिक कर्तव्यों के निरूपण की, जो 42वें संशोधन, 1976 के अनुसार 51-A अनुच्छेद द्वारा किया गया है, संवैधानिक विद्वानों ने कटु आलोचना की है। आलोचना का मुख्य आधार यह है कि मौलिक कर्तव्यों के पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है। परन्तु मौलिक कर्तव्यों का अपना महत्व है। इसका वर्णन निम्नलिखित हैः

1. भारतीय लोकतंत्र के लिए आवश्यक(Essential for the Indian Democracy) – विद्वानों का विचार है कि जिन मौलिक कर्तव्यों को संविधान में रखा गया है, उनको अपनाने से लोकतन्त्रीय व्यवस्था मजबूत होती है। उदाहरण के लिए, पर्यावरण का सुरक्षा सम्बन्धी कर्तव्य जहाँ वातावरण के दूषित होने से बचाने के लिए लाभदायक है वहाँ इसको अपनाने से व्यक्ति का भी अपना हित है।

2. नैतिक आदर्श (Moral Ideals)– संविधान में वर्णित मौलिक कर्तवय एक प्रकार के नैतिक आदर्श है। व्यक्ति जिस प्रकार नैतिक आदर्शों को सामाजिक जीवन में अपनाता है उसी प्रकार वह मौलिक कर्तव्यों को भी अपनाएगा। मौलिक कर्तव्यो से उसे ज्ञान होता है कि उसे किन उद्देश्यों की प्राप्ति करनी है। और किन आदर्शों के पालन करने से राष्ट्र का विकास होता है। संसद के संशोधन द्वारा मौलिक अधिकारों के पीछे जो कानूनी व्यवस्था नहीं की गई वह अच्छा ही किया गया क्योंकि इनके पीछे कानूनी शक्ति से नागरिक एक बोझ महसूस करता है। अब वह अपनी इच्छा से इन मौलिक अधिकारों का अनुसरण करेगा।

3. मौलिक कर्तव्य स्पष्ट दें (Fundamental Duties are Clear)- कुछ आलोचकों ने मौलिक कर्तव्यों की इस आधार पर आलोचना की है कि ये कर्तव्य अस्पष्ट हैं। परन्तु कई कर्तव्य जैसे संविधान और उसकी संस्थाओं का सम्मान करना, राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा करना, महिलाओं का सम्मान करना आदि बड़े ही स्पष्ट है इनका किसी नागरिक को अनुसरण करना कोई कठिन कार्य नहीं है।

4. अधिकार और कर्तव्य आपस में संबधित है। (Rights and Duties are Corelated)- अधिकार और कर्तव्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का बड़े ही विस्तार से वर्णन किया गया है। उचित तो यह था कि संविधान–निर्माण के समय ही मौलिक अधिकारों के साथ मौलिक कर्तव्यों का भी उल्लेख किया गया होता। 42वें संशोधन के द्वारा कर्तव्यों को संविधान में अंकित करके एक

महत्वपूर्ण कार्य किया है। संविधान सभा में जो सदस्यों द्वारा यह कहा गया था कि भारत के लोग केवल अधिकारों पर ही बल देते हैं कर्तव्यों पर नहीं। यह बात गलत है। सामाजिक जीवन में सभी लोग अपने ग्रन्थों द्वारा निश्चित किए गए कर्तव्यों का पालन करते हैं। इसलिए मौलिक कर्तव्य जिन्हें राष्ट्रीय ध्वज का अपमान नहीं कर सकता। रही राष्ट्र विरोधी तत्वों की बात, तो उनको दण्ड देने के लिए कानूनी व्यवस्था है।

5. मौलिक कर्तव्यों का सकारात्मक रूप– (Positive Nature of Fundamental Duties)- भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार सकारात्मक स्वरूप है। वे नागरिकों को राष्ट्र के प्रति कुछ करने के लिए प्रेरित करते हैं। इससे लोगों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। अतः भारतीय नागरिक धीरे–धीरे मौलिक कर्तव्यों का पालन करने के अभ्यस्त हो जांएगें।

1.7.7 निष्कर्ष

अन्त में यह सरलतापूर्वक कहा जा सकता है कि भारत के संविधान में मौलिक कर्तव्यों को अंकित करना पूरी तरह से उचित है। भारत में लोकतंत्र की स्थापना एकदम दासता के बाद हुई है। इसलिए यह उचित है कि भारत के नागरिकों को उनके कर्तव्यों का ज्ञान कराया जाएगा। भारतीय जनता इन कर्तव्यों को निश्चित रूप से अपनाएगी, जिससे की भारतीय लोकतंत्र की जड़े और मजबूत होंगी।

1.7.8 अभ्यास हेतू प्रश्न

लघू व दीर्घ उतरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों का वर्णन कीजिए। उन्हें किस प्रकार लागू किया जा सकता है?
2. भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों के स्वरूप का वर्णन करो।
3. भारतीय संविधान मे ंजो मौलिक अधिकार दिए गए हैं, उनका वर्णन कीजिए। क्या वे असीमित हैं?
4. 'समानता' तथा 'स्वतंत्रता' के अधिकारों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
5. भारतीय संविधान के अधीन व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की निवारक नजरबन्दी कानून को देखते हुए आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
6. टिप्पणी लिखिएः (क) धारा 19, (ख) धारा 32
7. मौलिक अधिकारों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
8. न्यायिक लेखों पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
9. भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 पर आलोचनात्म टिप्पणी लिखिए।

1.7.9 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.

- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.
- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India: The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.

1.8 राज्य–नीति के निर्देशक तत्व (Directive Principles of State Policy)

1.8.1 परिचय

राज्य–नीति के निर्देशक तत्व हमारे संविधान की संजीवनी व्यवस्थाएँ हैं। इन सिद्धातों में हमारे संविधान का और उसके सामाजिक न्याय दर्शन का वास्तविक तत्व निहित है। ये तत्व हमारे संविधान की प्रतिज्ञाओं और आकांक्षाओं को वाणी प्रदान करते हैं। संविधान निर्देशक सिद्धांतों का मार्ग प्रशस्त करता है और निदेशक सिद्धांत एवं उनकी क्रियान्वयन संविधान को सामाजिक शक्ति से अभिसंचित करता है। निदेशक सिद्धांतों का प्रायोजन शान्तिपूर्ण तरीकों से सामाजिक क्रांन्ति का पथ–प्रशस्त कर कुछ सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को तत्काल सिद्ध करना है इस प्रकार की सामाजिक क्रान्ति के माध्यम से संविधान सामान्य व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करना और हमारे समाज की सरंचना में परिवर्तन करना चाहता है। संविधान के भाग चतुर्थ का, जिसमें राज्य–नीति के निर्देशक तत्वों का विवेचन किया गया है, उद्देश्य उस सामाजिक ओर आर्थिक– क्रांति को मूर्त रूप प्रदान करना है, जिसे स्वाधीनता के पश्चात पूरा करना बाकी रह गया था। भारतीय संविधान में इन्हें अपनाने की प्रेरणा आरयलैंड से प्राप्त हुई।

1.8.2 उद्देश्य

1. राज्य–नीति निर्देशक सिद्धांतों की उत्पति को जानना।
2. राज्य–नीति निर्देशक सिद्धांतों के वर्गीकरण को समझना।
3. नीति–निर्देशक सिद्धांतों के संशोधन को जानना।
4. नीति–निर्दशक सिद्धांतों की सीमाओं को समझना।

1.8.3 निर्देशक तत्वों का अर्थ (Meaning of Directive Principles)

संविधान के चतुर्थ भाग में अनुच्छेद 36 से 51 तक निदेशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। राज्य–नीति के निदेशक सिद्धांत देश की विभिन्न सरकारों और सरकारी अभिकरणों के नाम जारी किए गए निर्देश है। जो देश की शासन व्यवस्था के मौलिक तत्व हैं। दूसरे शब्दों में, निदेशक कार्यपालिका और व्यवस्थपिका को दिए गए ऐसे निदेश है जिनके अनुसार उन्हें अपने अधिकारों का प्रयोग इस प्रकार करना होता है कि इन सिद्धांतों का पूरा और उचित रूप से पालन हो। ये सिद्धांत ऊँचें– ऊँचे आदर्शों की घोषणाएं हैं।'' सिद्धांत पथ–प्रदर्शन तथा ऊँची – ऊँची आकांक्षाओं के घोषणा–पत्र हैं। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार, ''राज्य नीति के निदेशक तत्वों की प्रकृति के सम्बन्ध में संविधान के अनुच्छेद 37 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि '' इस भाग (4) में दिए गए उपबन्धों को किसी भी न्यायालय द्वारा बाध्यता नहीं दी जा सकेगी, किन्तु फिर भी इसमें दिए हुए तत्व देश के शासन में मुलभुत हैं और विधि निर्माण में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य हागा।'' संविधान की प्रस्तावना में जिन उद्देश्यों को प्रकट किया गया है उन्हें व्यवहारिक रूप देने के लिए राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों का स्थान दिया गया है। जिस प्रकार 1935 के भारत सरकार अधिनियम में गर्वनर जनरल तथा गर्वनरों के लिए अनुदेश–पत्र जारी किए थे, उसी तरह नए संविधान में निदेशक सिद्धांत हमारे शासनकर्ताओं के लिए हिदायतें या अनुदेश हैं। ये सिद्धांत कार्यपालिका तथा विधानमण्डल के लिए निदेश हैं कि उन्हें किस तरह संचालन करना है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, '' राज्य नीति के निदेश सिद्धांत सन् 1935 के अधिनियम में जारी किए गए अनुदेश–पत्रों के समान ही हैं। बस अन्तर केवल यही है कि अधिनियम में गर्वनर–जनरल तथा गर्वनरों को निर्देशन दिए गए थे जबकि इस संविधान में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका की ही

स्थापना करता है, जबकि 'समाजवाद' शब्द का उल्लेख नहीं मिला है।'' प्रो. पायली के अनुसार, '' निदेशक तत्व भारतीय प्रशासकों के आचरण के सिद्धांत हैं।'' जी. एन. जोशी के शब्दों में, '' इन निदेशक तत्वों को विधानमण्डलों को कानून बनाते समय और कार्यपालिका को इन तत्वों को लागू करते समय ध्यान में रखना चाहिए। ये उस नीति की ओर संकेत करते हैं, जिस अनुसरण संघ और राज्यों को करना चाहिए।'' न्यायाधीश केनिया के अनुसार, '' निदेशक तत्वों में राष्ट्र की बुद्धिमतापूर्ण स्वीकृति बोल रही है, जो संविधान सभा के माध्यम से अभिव्यक्त हुई थी। संक्षेप में ये सिद्धांत शासन की नीतियों को निर्दिष्ट करने के लिए विधान में निहित किए गए हैं। डॉ. पायली ने इसे '' आधुनिक संवैधानिक प्रशासन की एक नवीन विशेषता बतलाया है, जिसकी प्रेरणा हमें आयरिश संविधान से ही मिली है। ये सिद्धांत प्रजातान्त्रामक भारत का शिल्यानास करते हैं। जब भारत सरकार इन्हें कार्यरूप में परिणत कर सकेगी तो भारत एक सच्चा लोककल्याणकारी राज्य कहला सकेगा।''

निदेशक सिद्धांतों को संविधान का अंग बनाने में संविधान – निर्माताओं का उद्देश्य क्या था? इन आधारभूत सिद्धांतों की रचना करते है। निदेशक सिद्धांत का वास्तविक महत्व इस बात का है कि ये नागरिकों के प्रति राज्य के दायित्व के द्योतक हैं। संविधान की प्रस्तावना में जिन आदर्शों की प्राप्ति की इच्छा प्रकट की गई है, ये उन आदर्शों की ओर बढ़ाने के लिए पथ–प्रदर्शन का कार्य करते हैं। जिन आदर्शों की प्राप्ति भारतीय राज्य का लक्ष्य है, ये उन आदर्शों की गणना है।

निर्देशक सिद्धांतों का सार तत्व

निर्देशक सिद्धांतों का सार तत्व संविधान के अनुच्छेद 38 में दिया गया है जिसमें संविधान की प्रस्तावना की प्रतिध्वनि सुनाई देती है–

''राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था थी, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रणित करे, भरसक कार्यसाधक के रूप में स्थापना और सरंक्षण करके लोक–कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा।''

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संविधान के भाग 4 में विभिन्न उपबन्ध निर्धारित किए गए हैं। '' संविधान ने राज्य को यह सुनिश्चित करने की आज्ञा दी है कि नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध हो जिससे कि आर्थिक प्रणाली का संचालन और देश के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण सामान्य जन के अधीन हो : मजदूरों को न केवल निर्वाह–योग्य मजदूरी प्राप्त हो, बल्कि वह इतनी हो जिससे वे अपने बच्चों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रख सकें, और अपने जीवन की संध्या में सेवा–निवृत होकर आराम से रह सकें ओर उस समय का तथा अन्य सामाजिक और सांस्कृतिक अवसरों का आनन्द लाभ कर सकें, स्त्रियों और बच्चों का विशेष ध्यान रखा जाए और जनता के दुर्बल वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष रूप से सवंर्द्धित किया जाए। राज्य के प्राथमिक कर्तव्यों में से एक लोगों के सामान्य जीवन–स्तर और घोषणा के स्तर को ऊपर उठाना है। अनुच्छेद 45 में यह आशा व्यक्त की गई है कि 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य और प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी। अन्य निदेशक सिद्धांतों में कृषि, पशुपालन को सुनिश्चित करने का संकल्प निहित है। इस प्रकार ये सिद्धांत राज्य के ऊपर यह ठोस जिम्मेदारी डालते हैं कि वह देश में लोकतन्त्र के लिए सुदृढ़ आधार का निर्माण करे।''

वस्तुतः संविधान के भाग 4 अर्थात् राज्य के नीति निदेशक तत्वों का उद्देश्य देश में उस सामाजिक और आर्थिक क्रांन्ति को मूर्त रूप प्रदान करता है जिससे देश के सभी नागरिकों को सामाजिक और आर्थिक न्याय प्राप्त हो सके, शोषकारी तत्वों की समाप्ति हो, समाज का प्रत्येक सदस्य संयत् स्वतंत्रताओं का उपयोग कर सके, अधिकारों के

अविभाज्य अंग के रूप में कर्तव्यों की गंगा बहे और देशवासियों में उस दृष्टिकोण का विकास हो जो अन्तराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बल प्रदान करे। निदेशक सिद्धांत व्यक्तिगत अधिकारों और सामाजिक आवश्यकताओं के बीच संतुलन स्थापित करने में सहायक होते हैं। इसके समुचित कार्यान्वयन पर आदर्श लोकतंत्र की इमारत खड़ी जा सकती है। नीति–निर्देशक तत्व हमारे संविधान के भाग 3 में है। उनकी जड़े भारतीय संस्कृति के अतीत के साथ जुड़ी हुई है। '' ये भारत के भविष्य, वर्तमान और भूत को एक–दूसरे से सम्बन्धित करते हैं और हमारे महान प्राचीन देश में सामाजिक क्रान्ति का अलख जगाते हैं।'' निसन्देह नीति निदेशक सिद्धांत देश में लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना करते हैं।

1.8.4 नीति निर्देशक तत्वों का महत्व (Importance of Directive Principles)

नीति निदेशक तत्वों की जो आलोचना की गई है उसका यह तात्पर्य नहीं लिया जाना चाहिए कि वे बिल्कुल व्यर्थ और महत्वहीन हैं। वास्तव में, सवैंधानिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से नीति निदेशक तत्वों का बहुत अधिक महत्व है। न्यायमूर्ति हेगडे के अनुसार, यदि हमारे संविधान के कई भाग ऐसे हैं जिन पर सावधानी और गहराई से विचार करने की आवश्यकता है तो वे है– भाग तीन और चार। उनमें संविधान का दर्शन निहित है और एक लेखक के शब्दों, '' वे हमारे संविधान की अन्तरात्मा है।'' डॉ. पायली के अनुसार, '' इन निदेशक तत्वों का महत्व इस बात में है कि ये नागरिकों के प्रति राज्य के सकारात्मक दायित्व हैं।'' इन तत्वों के महत्व का अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है।

1. असंगत तथा असामयिक होने के तर्क गलत (Directive Principles are neither Inconsistent not out of date)- नीति निर्देशक तत्वों के संबंध में प्रो. जैनिंग्ज ओर श्रीनिवासन जैसे व्यक्तियों की यह आलोचना नितान्त अनुचित है कि तत्व असंगत तथा असामयिक है। वास्तव में ये विचार केवल विदेशी नहीं है वरन् इस अध्याय में अनेक उपबन्ध पूर्णरूप में भारतीय है। यद्यपि 21वीं सदी में यह सिद्धांत पुराने पड जाएंगे ओर अव्यवहारिक हो जाएंगे, लेकिन कम से कम 20वीं शताब्दी के भारत में ये सिद्धांत उपयोगी तथा व्यवहारिक प्रतीत होते हैं। पुनः प्रो. एम. बी. पायली के शब्दों में, '' यदि कभी ये सिद्धांत पुराने पड जाएंगे तो इनका आवश्यकतानुसार संशोधन किया जा सकता है क्योंकि संशोधन प्रक्रिया अत्यन्त सरल है। जब तक इनके संशोधन करने का समय आएगा, तब तक भारत इनका पूरा लाभ उठा चुका होगा और भारत भूमि में आर्थिक लोकतंत्र की जड़े गहरी हो चुकी होगी। संविधान का निर्माण वर्तमान समस्याओं को सुलझाने के लिए होता है। यदि हम वर्तमान का निर्माण सुदृढ नींव पर करें तो भविष्य की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

2. निदेशक तत्वों के पीछे जनमत की शक्ति (Power of Public Opinion behind the Principles) -यद्यपि इन निदेशक तत्वों को न्यायालय द्वारा क्रियान्वित नहीं किया जा सकता, लेकिन इसके पीछे जनमत की सत्ता होती है, जो प्रजातंत्र का सबसे बड़ा न्यायालय है। अतः जनता के प्रति उतरदायी कोई भी सरकार इनकी अवलेहना का साहस नहीं कर सकती। शासन द्वारा किया गया इनका बार–बार उल्लंघन देश में शक्तिशाली विरोध का जन्म देगा। व्यवस्थापिका के भीतर शासन को विरोधी दल के प्रहारों का सामना करना पड़ेगा और व्यवस्थापिका के बाहर इसे निर्वाचन के समय निर्वाचको को जवाब देना होगा। निदेशक तत्वों के पीछे जनमत की इस शक्ति के कारण शासक दल को इनकी क्रियान्विति के प्रति पर्याप्त उत्साह का परिचय देना होगा। प्रो. पायली के अनुसार, '' ये निदेशक तत्व राष्ट्रीय चेतना के आधारभूत स्तर का निर्माण करते हैं

और जिनके द्वारा इन तत्वों का उल्लंघन किया जाता है, वे ऐसा कार्य उतरदायित्व की स्थिति से अलग होने के जोखिम पर ही करते हैं।'' आलोचक राघवचारी भी स्वीकार करते हैं कि '' जो शासन सता पर आधिपत्य बना, उसे इस अनुदेश पत्र का आदर करना ही होगा..... आगामी चुनाव में उसे इस सम्बन्ध में निर्वाचकों को जवाब देना ही पड़ता है।'' ऐसी स्थिति में श्री अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर ने संविधान सभा में ठीक ही कहा था कि '' कोई लोकप्रिय मन्त्रिमंडल संविधान के चतुर्थ भाग के सम्बन्धों के उल्लंघन का साहस नहीं कर सकता है''

3. चरम सीमाओं से रक्षा (An Insurance Against Extremes)- हमारे संविधान निर्माता इस तथ्य से पूर्णतया परिचित थे कि प्रजातान्त्रिक राज्य में परिवर्तनशील जनमत के परिणामस्वरूप विभिन्न समयों में विभिन्न राजनीतिक दल सतारूढ हो सकते हैं। कभी दक्षिणपंथी दल शासन सता पर अधिकार कर सकता है। और कभी कोई वामपंथी दल। निदेशक तत्व दोनों प्रकार की सरकारों को मर्यादित रखेंगे तथा उन्हें किसी प्रकार का एक तरफ झुकाव रखने से रोकेंगे। श्री अमरनन्दी के अनुसार, '' संविधान के निदेशक तत्वों इस बात का आश्वासन देते हैं कि अनुदार दल अपनी नीति के निर्धारण में इन तत्वों की पूर्ण अवलेहना नहीं कर सकेगा और एक उग्रवादी दल अपने दल के आर्थिक अपने दल के आर्थिक या अन्य कार्यक्रम को पूरा करने के लिए संविधान का अंत करना आवश्यक नहीं समझेगा। इस प्रकार निदेशक तत्व वाम और दक्षिण पन्थ की चरम सीमाओं से सुरक्षा प्रदान करते हैं।''

4. नैतिक आदर्शों के रूप में महत्व (Importance as Moral Ideals)- यदि निदेशक तत्वों को केवल नैतिक धारणाएँ ही मान लिया जाए, तो इस रूप में भी उनका अपार महत्व है। ब्रिटेन में मेग्ना कार्टा, फ्रांस में मानवीय तथा नागरिक अधिकारों की घोषणा तथा अमरीकी संविधान की प्रस्तावना को कोई कानूनी अनुशक्ति प्राप्त नहीं, फिर भी इन देशों के इतिहास पर इसका प्रभाव पड़ा है। इसी प्रकार उचित रूप में यह आशा की जा सकती है। कि ये अन्य निदेशक तत्व भारतीय शासन की नीति को निर्देशित और प्रभावित करेंगे। एलेन ग्लेडहिन के शब्दों में '' अनगिनत व्यक्तियों के जीवन नैतिक आदर्शों के फलस्वरूप सुधरे हैं ओर ऐसे उदाहरण भी मिलने कठिन नहीं है जबकि उच्च आदर्शों को राष्ट्रो के इतिहास पर प्रभाव पड़ा हो।''

5. संविधान की व्याख्या में सहायक (Helpful in the Interpretation of the Constitution)- संविधान के अनुसार निदेशक तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं। जिसका तात्पर्य है कि देश के प्रशासन के लिए उतरदायी सभी सताएँ उनके द्वारा निर्देशित होंगी। न्यायपालिका भी शासन का एक महत्वपूर्ण अंग है। इस कारण यह आशा की जाती है कि भारत में न्यायालय संविधान की व्याख्या के कार्य में निदेशक तत्वों को उचित महत्व देंगे। प्रो. एलेक्जेण्ड्रोविच का मत हैं, '' चूंकि निदेशक सिद्धांतों में संविधान सभा की आर्थिक और सामाजिक नीति बोल रही है और क्योंकि उसमें हमारे संविधान–निर्माताओं की इच्छा की अभिव्यक्ति है, इसलिए हमारे न्यायालयों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे मौलिक अधिकारों सम्बन्धी उपबन्धों की व्याख्या करते समय राज्य के नीति निर्देशक तत्वों पर पूरा–पूरा ध्यान दें। भारतीय न्यायालयों ने कई बार मौलिक अधिकार सम्बन्धी विवादों में सर्वोच्च न्यायालय के अनुच्छेद 47 के आधार पर निर्णय दिया कि शासन ने मादक द्रव्य निषेध अधिनियम पास करके उचित प्रतिबन्ध ही लगाया था। पुनः न्यायालय के बिहार राज्य बनाम कामेश्वर सिंह वाले विवादी में अनुच्छेद 39 के प्रकाश में यह निर्णय दिया था कि जमींदारी के अंत का उद्देश्य वास्तविक जनहित ही था। इसी प्रकार विजय वस्त्र उधोग बनाम अजमेर राज्य के विवाद में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 43 के प्रकाश में न्यूनमत पारिश्रमिक अधिनियम को उचित ठहराया। श्री एम. सी. सीतलवाड़ के

शब्दों में , '' राज्य नीति के इन मूलभूत सिद्धांतों को वैधानिक प्रभाव प्राप्त न होते हुए भी इनके द्वारा न्यायालयों के लिए उपयोग प्रकाश–स्तंभ का कार्य किया जाता है।''

6. शासन के मूल्यांकन का आधार (Basis of the Evaluation of Government) नीति निदेशक तत्वों द्वारा जनता को शासन की सफलता व असफलता की जाँच करने का मापदण्ड भी प्रदान किया जाता है। शासक दल द्वारा अपने मतदाताओं को निदेशक सिद्धांतों के संदर्भ में अपनी सफलताएं बतानी होंगी और शासन शक्ति पर अधिकार करने के इच्छुक राजनीतिक दल को इन तत्वों की क्रियान्विति के प्रति अपनी तत्परता और उत्साह दिखाना होगा। इस प्रकार निदेशक तत्व जनता को विभिन्न दलों की तुलनात्मक जांच करने योग्य बना देंगे।

7. कार्यपालिका प्रधान इनका दुरूपयोग नहीं कर सकते हैं (Executive Head cannot Exploit Provisions)- निदेशक तत्व के पक्ष में अन्तिम बात यही कही जा सकती है कि यद्यपि विधानसभा के सदस्यों तथा कुछ संविधान वेताओं ने यह भय प्रकट किया है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल इस आधार पर किसी विधेयक पर अपनी सम्मति देने से इंकार कर सकते हैं कि वह निदेशक तत्वों के प्रतिकूल है, लेकिन व्यवहार में ऐसी घटना की सम्भावना कम है, क्योंकि संसदात्मक शासन प्रणाली में नाममात्र का कार्यपालिका प्रधान लोकप्रिय मन्त्रिपरिषद द्वारा पारित विधि को अस्वीकृत करने का दुस्साहस नहीं कर सकता है। डॉ. अम्बेडकर के शब्दों में, '' विधायिका द्वारा पारित विधि को अस्वीकृत करने के लिए राष्ट्रपति या राज्यपाल निदेशक तत्वों का प्रयोग नहीं कर सकते।''

   वास्तव में , निदेशक तत्व भारतीय शासन के सर्वोच्च सिद्धांत है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री केनिया ने 'गोपालन बनाम मद्रास राज्य' के विवाद पर निर्णय देते हुए कहा था, '' क्योंकि राज्य की नीति के निदेशक तत्व संविधान में शामिल है, इसलिए वे बहुमत दल के अस्थाई आदेश मात्र ही नहीं हैं, वरन् उनमें राष्ट्र की बुद्धिमतापूर्ण स्वीकृति बोल रही है जो संविधान सभा के माध्यम से व्यक्त हुई थी।''

1.8.5 निदेशक सिद्धांतों का वर्गीकरण (Classification of Directive Principles)

संविधान के अनुच्छेद 36 में 'राज्य' की परिभाषा दी गई है। तदनुसार 'राज्य' के अन्तर्गत भारत की सरकार और संसद तथा राज्यों में से प्रत्येक की सरकार और विधान–मण्डल तथा भारत राज्य–क्षेत्र के भीतर अथवा भारत सरकार के नियन्त्रण के अधीन अवस्थानीय और अन्य प्राधिकार भी हैं। अनुच्छेद 37 के अनुसार निदेशक तत्व न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय न होने पर भी देश के शासन में मूलभूत हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 38 से 51 में राज्य–नीति के निदेशक सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। ये निदेशक सिद्धांत अथवा तत्व संविधान में किसी युक्तियुक्त योजना के अनुसार नहीं गिनाए गए हैं। अतः उनका वर्गीकरण करना कठिन है। तथापि, अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें निम्नलिखित वर्गों में बांटना उपयुक्त होगा–

(क) आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी निदेशक तत्व,

(ख) सामाजिक हित सम्बन्धी निदेशक तत्व,

(ग) न्याय, शिक्षा लोकतंत्र एवं प्राचीन स्मारकों की रक्षा से सम्बन्धित निदेशक तत्व, एवं

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा सम्बन्धी तत्व।

(ड) संविधान–निर्माता देश में लोक–कल्याणकारी राज्य स्थापित करना चाहते थे। अतः उन्होंने अधिकांश निर्देशक तत्वों द्वारा आर्थिक सुरक्षा तथा आर्थिक न्याय की स्थापना करने की व्यवस्था की। संविधान में इस प्रकार के निम्नलिखित निर्देशक तत्व हैं।

1. अनुच्छेद 38 के अनुसार राज्य लोक–कल्याण की उन्नित के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा। 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा अनुच्छेद 38 में एक नया खण्ड जोड़कर एक नया निर्देशक तत्व जोड़ा गया है। यह नया खण्ड यह उपबन्धित करता है कि राज्य इस बात का प्रयास करेगा कि विशेष रूप से व्यक्तियों की आय में असमानता कम हो, और पद, सुविधाओं और अवसरों के सम्बन्ध में केवल व्यक्तियों में ही नहीं वरन् विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले या विभिन्न व्यवसाय में लगे सभी वर्ग के लोगों में असमानता दूर हो।
2. राज्य देश के नर और नारी सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्रदान करने का प्रयत्न करेगा।(अनुच्छेद 39–क)
3. राज्य समाज की भौतिक सम्पति के स्वामित्व और नियंत्रण की ऐसी व्यवस्था करेगा जिससे अधिकाधिक सार्वजनिक हित हो सके। (अनुच्छेद 39–ख)
4. राज्य आर्थिक व्यवस्था को इस प्रकार से चलाने का प्रयत्न करेगा जिससे धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के लिए हितकारी केन्द्रीयकरण हो।(अनुच्छेद 39–ग)
5. राज्य पुरूषों और स्त्रियों, दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था करेगा।(अनुच्छेद 39–घ)
6. राज्य ऐसी व्यवस्था करेगा कि श्रमिक पुरूषों और स्त्रियों के स्वास्थ्य तथा शक्ति का और बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो। राज्य यह देखेगा की आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु के अनुकूल न हों।(अनुच्छेद 39–ड)
7. मूल संविधान के अनुच्छेद 39 (च) में कहा गया है कि राज्य '' बच्चों और युवकों को शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से सरंक्षण देगा।'' 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा इस अनुच्छेद कों संशोधित करते हुए कहा गया है कि – '' राज्य के द्वारा बच्चों को स्वस्थ विकास के लिए अवसर और सुविधाएँ प्रदान की जाएगी, उन्हें स्वतंत्रता और सम्मान की स्थिति प्राप्त होगी, बच्चों तथा युवको की शोषण से और आर्थिक या नैतिक परित्याग से रक्षा की जाएगी।''
8. राज्य अपने आर्थिक साधनों के अनुसार तथा विकास की सीमाओं के भीतर यह प्रयत्न करेगा कि सभी नागरिकों को योग्यतानुसार काम मिल सके, वे शिक्षा पा सकें और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी तथा अंगहीनता आदि की दशाओं में सार्वजनिक सहायता पा सकें।(अनुच्छेद 41)
9. राज्य काम की यथोचित और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए तथा प्रसूति सहायता के लिए उपबन्ध करेगा।(अनुच्छेद 41)
10. राज्य श्रमिकों के लिए काम, निर्वाह–मजदूरी, शिष्ट जीवन स्तर , समुचित अवकाश तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्रदान कराने का प्रयास करेगा। राज्य विशेष रूप से गांवों में कुटीर उद्योगों को व्यक्तिगत या सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयत्न करेगा।(अनुच्छेद 43)
11. राज्य वैज्ञानिक आधार पर कृषि और पशु–पालन का संचालन करेगा।(अनुच्छेद 48)

42वें संविधान संशोधन में आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी दो और निर्देशक तत्व जोड़े गए हैं जो कमजोर वर्गों के लिए निःशुल्क कानूनी सहायता और औद्योगिक प्रतिष्ठानों के प्रबन्ध में कर्मचारियों को भागीदार बनाने की व्यवस्था से सम्बन्धित हैं। ये तत्व अनुच्छेद 39 के उपखण्डों के रूप में जोडे गए हैं। 44वें संशोधन द्वारा एक और निर्देशक तत्व जोड़ा गया है। जिसमें कहा गया है कि '' राज्य न केवल व्यक्तियों की आय और उनके सामाजिक स्तर, सुविधाओं तथा अवसरों सम्बन्धी भेदभाव को कम से कम करने का प्रयत्न करेगा बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे व्यक्ति के समुदायों के बीच विद्यमान आय, सामाजिक स्तर, सुविधाओं एवं अवसरों सम्बन्धी भेदभाव को भी कम से कम करने का प्रयत्न करेगा।'' इस तरह से उन तत्वों में आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना का स्वर निहित है।

(ख) सामाजिक हित सम्बन्धी निर्देशक तत्व

इस सम्बन्ध में राज्य के निम्नलिखित कर्तव्य निश्चित किए गए हैंः–

1. भारत भर में नागरिकों के लिए एक समान व्यवहार–संहिता प्राप्त कराने का प्रयत्न करना। (अनुच्छेद 44)
2. ज्नता के दुर्बलतर अगों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के शिक्षा तथा अर्थ–सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करना और सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करना।(अनुच्छेद 46)
3. अपने लोगों के आहार–पुष्टि–तल और जीवन स्तर को ऊँचा करना तथा लोक स्वास्थ्य औषधियों के उपभोग पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न करेगा। (औषधीय प्रयोजनों से अतिरिक्त अनुच्छेद 47)
4. राज्य संसद द्वारा कानून बनाकर राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, ऐतिहासिक स्थानों और चीजों का सरंक्षण करेगा।(अनुच्छेद 49)
5. संविधान के 42 वें संशोधन द्वारा देश के पर्यावरण की रक्षा को भी निर्देशक तत्वों में शामिल किया गया है। 48वें अनुच्छेद के बाद अनुच्छेद 48 (क) जोड़ कर कहा गया है कि '' राज्य देश के पर्यावरण की रक्षा तथा उसमें सुधार का प्रयत्न करेगा। राज्य द्वारा वनों और वन्य जीवन की सुरक्षा का भी प्रयत्न किया जाएगा।''

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा सम्बन्धी तत्व

संविधान निर्माता भारत के परम्परागत आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'जियों और जीने दो' से प्रभावित थे। इसी आदर्श को ध्यान में रखते हुए संविधान के अन्तिम निर्देशक तत्व 51 में कहा गया है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में निम्नलिखित बातों का प्रयत्न करेगा।

1. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा में वृद्धि करने का,
2. राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाए रखने का
3. संगठित लोगों के एक–दूसरे के व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि सम्बन्धों के प्रति आदर बढ़ाने तथा
4. अन्तर्राष्ट्रीय विवादों की मध्यस्थता द्वारा निबटारे के लिए प्रोत्साहन देने का।

स्पष्ट है कि राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों द्वारा राज्य का यह कर्तव्य बनाया गया है कि वह देश के वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना करे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता, समता और न्याय प्राप्त हो सके।

1.8.6 नीति निर्देशक तत्वों और मूल अधिकारों में अन्तर (Distintion between Fundamental Rights and Directive Principles)

यद्यपि नीति निर्देशक तत्व और मूल अधिकार एक–दूसरे के पूरक है और दोनों हमारे संविधान की अन्तरात्मा है, साथ ही दोनों में एक कार्य–पद्वति का निर्णय करतें हुए देश के लिए देश के लिए एक उज्जवल भविष्य का स्वप्न संजोया गया है तथा दोनों में निम्नलिखित रूप से आधारभूत अन्तर हैं–

1. मूल अधिकार नकारात्मक रूवरूप लिए हैं जबकि निर्देशक तत्व सकारात्मक। मूल अधिकार इसलिए है क्योंकि वे राज्य पर कुछ प्रतिबन्ध लगाते हैं। निर्देशक तत्व सकारात्मक इसलिए भी है कि ये राज्यों को किन्हीं निश्चित कार्यों के करने का निर्देश देते हैं।

2. मूल अधिकार वाद–योग्य अथवा न्याय–योग्य हैं, निर्देशक तत्व वाद–योग्य अथवा न्याय–योग्य नहीं है। अनुच्छेद 37 स्पष्ट रूप से कहता है कि निर्देशक तत्वों को किसी न्यायालय द्वारा बाध्यता नहीं दी जा सकेंगी, तथापि ये तत्व देश के शासन के मूलभूत आधार हैं और विधि निर्माण में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य है। दूसरी ओर मूल अधिकार न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है अर्थात् न्यायालय मूल अधिकार से किसी असंगत कानून को अवैध घोषित कर सकते हैं। लेकिन कोई भी विधि इस आधार पर अवैध घोषित नहीं की सकती हैं िकवह निर्देशक तत्वों के विरोध में है और न ही न्यायालय सरकार को इन तत्वों को कार्यान्वित करने के लिए कोई आदेश दे सकता है। उदाहरणार्थ एक अवैध रूप से गिरफ्तार किया हुआ व्यक्ति न्यायालय से बन्दी प्रत्यक्षीकरण का लेख प्राप्त कर सकता है लेकिन यदि सरकार निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयास नहीं करती तो इसके लिए व्यक्ति न्यायालय से कोई उपचार प्राप्त नहीं कर सकता है।

3. मूल अधिकारों का विषय व्यक्ति हैं, लेकिन निर्देशक तत्व राज्य के लिए है।

4. मूल अधिकार नागरिकों को संविधान द्वारा प्रत्यक्ष रूप से दिए गए हैं जबकि निर्देशक तत्वों का उपभोग नागरिक तभी कर सकते हैं। जब राज्य विधि द्वारा इन्हें कार्यान्वित करें।

5. निर्देशक तत्वों का क्षेत्र मूल अधिकारों के क्षेत्र से कहीं अधिक व्यापक है। मूल अधिकारों का क्षेत्र भारत राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत है जबकि निर्देशक तत्वों में अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के सिद्धांत भी सम्मिलत है।

   यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि चाहे नीति निर्देशक तत्व न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय न हों, पर उनकी संवैधानिक महता और पवित्रता के बारे में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है।

1.8.7 निर्देशक तत्वों का क्रियान्वयन और उपलब्धियाँ (Implementation and Achievements with Regard to Directive Principles)

नीति निदेशक तत्वों के क्रियान्वयन की समस्या पुलिस राज्य को कल्याणकारी राज्य और संविधान द्वारा स्थापित राजनीतिक लोकतंत्र को आर्थिक लोकतंत्र में परिवर्तन करने की समस्या है। यह कार्य इतना बड़ा हे कि इसे तुरन्त सम्पन्न नहीं किया जा सकता। इसे पूरा करने के लिए दीर्घकालीन प्रयत्न, प्रचुर धन और तीव्र गति से आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक विकास आवश्यक है।

परन्तु राज्य ने यह कार्य प्रारम्भ कर दिया है और इस दिशा में कई महत्वपूर्ण बातें की गई है : प्रथमतः नौ वीं पंचवर्षीय योजनाओं के आधार पर कृषि और उधोगों की उन्नति, शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाओं का प्रसार, नौकरी व कार्य के साधनों में वृद्धि, राष्ट्रीय आय व लोगों के रहन सहन के स्तर को ऊचाँ उठाने का प्रयत्न किए गए हे। द्वितीय, युवक वर्ग व बालकों की शोषण से रक्षा करने के लिए अनेक कानून पास किए गए हैं, बीमारी और दुर्घटना के विरूद्ध सुरक्षा के लिए कुछ सीमा तक मजदूर वर्ग में बीमा योजना लागू की गई है बेरोजगारी बीमा योजना को लागू करने और रोजगार की सुविधाएँ बढ़ाने का प्रयास किए जा रहे हैं। राज्य सामाजिक कल्याण की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। तृतीय, हिन्दू कोड बिल के कई अंशों जैसे हिन्दू विवाह अधिनियम 1955: हिन्दू उतराधिकार अधिनियम, 1956: आदि को पारित करके देश के सभी वर्गों के लिए समान विधि संहिता प्राप्त करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। चतुर्थ, अस्पृश्यता निवारण के लिए पिछड़ी हुई जातियों के बालकों को उदारतापूर्वक छात्रवृति और अन्य सुविधाओं द्वारा शिक्षित करने का कार्य भी हुआ है। पंचम, यद्यपि अब भी निःशुल्क और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा और सबके लिए पर्याप्त स्वास्थ्य सेवा का प्रबन्ध अधूरा ही है। तथापि इन दिशाओं में भी महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। अन्तिम स्थान में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास योजनाओं द्वारा ग्राम पंचायतों को अधिक सशक्त बनाने का प्रयास किया जा चुका है। गरीबों को मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। कई राज्यों ने वृद्ध और असहाय लोगों के लिए पेंशन की व्यवस्था की है। सामाजिक सुरक्षा पेंशन के लिए सातवें आयोग (1979–84) ने राज्यों को 264.08 करोड रूपये दिए जाने का प्रावधान किया। बाल श्रमिकों के हितो के सरंक्षण हेतु केन्द्रीय बाल श्रमिक बोर्ड का गठन किया गया है तथा राज्यों से कहा गया है कि जिला स्तर पर ऐसे ही बोर्डो का गठन करें।

1969 के बाद ही राजनीति में तत्कालीन शासक वर्ग द्वारा निरन्तर संकल्प व्यक्त किया गया कि निदेशक तत्वों को अधिक तीव्र गति के साथ क्रियान्वित किया जाएगा। 1970 से 1976 के वर्षों में इस पुष्टि से कुछ कार्य भी दिए गए, यथा–14 प्रमुख बैंको का राष्ट्रीयकरण, राजाओं के प्रिवीपर्स की समाप्ति, सम्पति के मौलिक अधिकार को सीमित करने हेतु संविधान में 24वां , 25वां, 29वां और 44वां संशोधन और तस्कर व्यापार विरोधी कार्यवाहियाँ, आदि। 1976 में ही संसद के द्वारा 'शहरी भूमि सीमाकरण कानून' पारित किया गया, जिसके अनुसार चार श्रेणी के शहरों में भूमि की सीमा 500 वर्गमीटर से 2,000 वर्गमीटर निश्चित की गई। 1971 के लोकसभा चुनावों से ही 'गरीबी' बेरोजगारी और असमानता' दूर करने का नारा भी जोर–शोर से लगाया गया, लेकिन इस संबंध में जैसा ठोक कार्य अपेक्षित था, वैसा नहीं किया गया। 1977 से भारत की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन हुआ है। 197 में सतारूढ़ जनता पार्टी द्वारा अपने चुनाव धोषणा पत्र में 'सम्पति के मूल अधिकार'को समाप्त करने और समस्त जनता को 'रोजी रोटी का अधिकार' प्रदान करने की बात कही गई थी। 'सम्पति के मूल अधिकार' को सामाजिक आर्थिक समानता के मार्ग में बाधक मानकर 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा 'सम्पति के मूल अधिकार' को समाप्त कर दिया गया। निदेशक तत्वों की क्रियान्विति की दिशा अभी हाल ही में कुछ ठोस कार्य भी हुआ है, जैसे पश्चिमी बंगाल और केरल की सरकारों द्वारा बेरोजगार लोगों के लिए भते की व्यवस्था करना, लेकिन यह व्यवस्था बहुत सीमित रूप से ही की जा सकी है।

निदेशक तत्वों की क्रियान्वित पर जब हम विचार करें, तब हमारे द्वारा इस तथ्य को दृष्टि में रखा जाना चाहिए कि सर्वाधिक प्रमुख निदेशक तत्वों का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 39 में किया गया है। और ये निदेशक तत्व' आर्थिक तथा सामाजिक न्याय' सें संबंधित है। 'संविधान सभा वाद विवाद' के अध्ययन से भी स्पष्ट है कि 'निदेशक तत्वों का उद्देश्य' आर्थिक तथा सामाजिक न्याय, दूसरे शब्दों में अधिकाधिक संभव सीमा तक आर्थिक सामाजिक समानता की स्थापना करना है। जब हम इस दृष्टि से आज की स्थिति पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि निर्देशक

तत्वों की क्रियान्वित के सम्बन्ध में स्थिति सन्तोषजनक नहीं हैं। सामाजिक समानता स्थापित करने की दिशा में थोडा कार्य भले ही हुआ हो, लेकिन आर्थिक समानता स्थापित करने की दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई है। आर्थिक असमानता का जो अनुपात संविधान लागू किए जाने के समय था आज उसमें थोडी सी कमी होने के बजाय बहुत अधिक वृद्धि हुई है। 'समाजवादी ढांचे का समाज, समाजवाद, लोक कल्याणकारी राज्य, भारतीय समाजवाद, समय समय पर ऐसे कई नारे पूर्व और वर्तमान शासक वर्ग के द्वारा लगाए गए हैं, लेकिन एक तरफ भीषण गरीबी और दूसरी तरफ अन्तहीन विलासिता, निरन्तर बढ़ती बेरोजगारी और अशिक्षा की जो स्थिति देखी जाती है, वह इस प्रश्न को जन्म देती है कि क्या शासक वर्ग की निदेशक तत्वों में, दूसरे शब्दों में आर्थिक तथा सामाजिक न्याय में कोई आस्था है?

देश में आर्थिक विषमता बढ़ रही है क्योंकि मात्र 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय उत्पादन का अधिकांश हिस्सा हजम कर जाते हैं और इसी कारण से देश में कुछ परिवारों का राष्ट्रीय उत्पादन पर एकाधिकार बढ़ गया है आज भी देश की 34 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रही है। देश में 2 करोड 33 लाख आवास मकानों की कमी है। प्रतिवर्ष मात्र 4 लाख मकान बनते हैं। जबकि आवश्यकता प्रतिवर्ष 50 लाख मकानो की होती है 2 प्रतिशत जनसंख्या के पास आवश्यक शौचालय हैं, 6 लाख लोग प्रतिवर्ष तपेदिक से मरते हैं, 25 लाख लोग कोढ से ग्रसित हैं, 90 लाख लोगा अन्धे और प्रति 17,600 लोगो पर एक डाक्टर की सुविधा उपलब्ध है। लाखों बच्चे जोखिम भरे स्थानों पर श्रम करते हैं वर्तमान की साक्षरता का प्रतिशत केवल 65.38 प्रतिशत है।

दिसम्बर 1997 में जारी यूनीसेफ की रिपोर्ट ' दूनिया भर में बच्चों की स्थिति' बताती है कि दुनिया के कुपोषण के शिकार बच्चों में आधे भारतीय हैं, यह भी जहाँ दुनिया भर में पाँच वर्ष से कम उम्र के कुपोषित बच्चों का प्रतिशत 37 हैं, वहीं भारत में यह 52 है। इसी तरह, दुनिया भरत में इस आयु वर्ग के बच्चों की मृत्यु दर 88 है। भारत में 13 करोड लोग सुरक्षित पेयजल और 72 करोड लोग स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित है।

जून 1999 में जारी विश्व बैंक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 1980 के दशक के अन्तिम वर्षों में गरीबो की जनसंख्या 30 करोड थी जो 1997 में बढ़कर 34 करोड हो गई।

172 राष्ट्रों के लिए मानव विकास सूचकांक का आंकलन संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की वर्ष 1999 की 'मानव विकास' रिपोर्ट में किया गया है। इनमें सबसे प्रमुख मानव विकास सूचकांक है जो जीवन प्रत्याशा, शैक्षणिक उपलब्धि तथा वास्तविक प्रति व्यक्ति आय पर आधारित हैं। इनमें भारत का 132 वां स्थान है।

इन आंकडों से यह प्रकट होता है कि पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से निदेशक सिद्धांतों के क्रियान्वयन हेतु अभी बहुत कुछ करना शेष है। कितने आश्चर्य की बात है कि भारत दुनिया के प्रथम पन्द्रह औघोगिक देशों में स्थान रखता है और तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित मानव शक्ति वाले राष्ट्रों में हमारा तीसरा स्थान है, हमारे यहाँ दुनिया की सबसे बड़ी शिक्षा व्यवस्था है तथापित विष्व बैंक के सर्वे के आधार पर हम दुनिया के सबसे निर्धनतम दस देशों में से एक हैं।

1.8.8 निर्देशक तत्वों की आलोचना

राज्य नीति के निर्देशक तत्वों की आलोचना प्रायः होती रही है। संविधान सभा में इन पर खुलकर चर्चा हुई थी। संविधान सभा में प्रो. के. टी. शाह ने कहा था– ''राज्य नीति के ये निर्देशक तत्व एक ऐसे चैके समान है जिनका भुगतान बैंक की इच्छा पर छोड़ दिया गया है।'' कई आलोचकों ने इन सिद्धांतों को संविधान निर्माताओं की पवित्र भावनाओं और आकांक्षाओं पर संग्रह मात्र कहा है कतिपय आलोचकों ने इन्हें 'थोथे वचनों' की संज्ञा दी हैं। आलोचना के मुख्य आधार प्रायः ये रहें है–

1. ये तत्व वाद–योग्य नहीं है। अतः इनके पीछे कोई बाध्यता भी नहीं है। यह राज्य की इच्छा पर है कि वह इन्हें कहाँ तक लागू करता है इस प्रकार ये राजनीतिक घोषणा मात्र है। न्यायिक बाध्यता के अभाव के कारण इनकी बहुत ही शक्ति बहुत ही कमजोर हो गई है।
2. इन तत्वों में वर्णित अनेक तथ्य बड़े अनिश्चित और अस्पष्ट हैं। उदाहरणार्थ, समाजवादी सिद्धांतों में श्रमिकों और मालिकों के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में कोई निश्चित व्यवस्था नहीं है और न ही राष्ट्रीय योजनाओं को कोई स्पष्ट विवरण दिया गया है।
3. कुछ ऐसे तत्व भी गिना दिए गए है जिनका पालन व्यवहार में असम्भव सा है, जैसे मद्य–निषेध। इस प्रकार के तत्वों या सिद्धांतों के प्रति भी जन साधारण की निष्ठा कम हो जाती है।
4. निर्देशक तत्वों को लागू करने का बढ़ा चढ़ा अथवा मिथ्या आश्वासन देकर चुनाव युद्ध जीतने की चाल खेली जाती है।
5. संविधान में कुछ निर्देशक तत्व इस प्रकार के हैं जिन्हें एक निश्चित अवधि में पूरा किया जाना था, उदाहरणार्थ, संविधान लागू होने के 10 वर्ष के भीतर 14 वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करनी थी, किन्तु ऐसा पिछले 42 वर्षों से संभव नहीं हो पाया है। इसी प्रकार उत्पादन और वितरण के साधनों की न्यायपूर्ण व्यवस्था भी आज तक सम्पादित नहीं हो सकी हैं।
6. कुछ क्षेत्रों में यह भी कहा गया है कि निर्देशक तत्वों का संविधान से समावेश कुछ निहित राजनीतिक स्वार्थों के कारण किया गया था। राज्यों की यह माँग थी कि संविधान में शिक्षा सम्बन्धी, विश्राम सम्बन्धी और बेकारी सम्बन्धी अधिकारों को सम्मिलत कर लिया जाए तथा यथा संभव उन्हीं मौलिक अधिकारों उपयोग किया जाए।

1.8.9 निष्कर्ष

1.8.10 मुख्य शब्दापली

1.8.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.8.12 संदर्भ सूची

- G. Austin, The Indian Constitution: Comer Stone of Nation, Oxford, Oxford University Press, 1966.
- G. Austin, Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi, Oxford University Press 2000.
- D.D. Basu, An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, Prentice Hall, 1994.
- D.D. Basu and B. Paarekh (ed). Crisis and Change in contemporary India, New Delhi, Sange, 1994.
- C.R Bhambhri, The Indian State: Fifty years. New Delhi, Shipra, 1997.
- P. Brass, Politics of India Since Independence Hyderabad, Orient Longman, 1990.
- P. Brass, Language, Region and Politics in North India London, Cambridge University Press, 1974.

- Chanda, Federalism in India: A Study of Union-State Relations, London, George Alien & Unwin, 1965.
- S. Cambridge and J. Harriss, Reinventing India: Liberalization Hindu Nationalism and Popular Democracy, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- B.L. Fadia, State Politics in India, 2 Vols, New Delhi, Rediant Publishers, 1984.
- R.L. Hardgrave, India: Government and Politics in a Developing Nations, New York, Harcourt, Braqce and World. 1965.
- N.G. Jayal (ed.). Democracy in India, Delhi, Oxford University Press, 2001.
- S. Kaushik (ed.) Indian Government and Politics, Delhi University, Directorate of Hindi Implementation, 1990.
- Kohli, Democracy and Discontent: India's Growing Crisis of Governability, Cambridge, Cambridge University Press, 1991.
- R. Kothari, Politics in India, New Delhi, Orient Longman, 1970.
- R. Kothari, Party System and Election Studies, Bombay, Asia Publishing House 1967.
- W.H. Morris Jones, Government and Politics in India, Delhi, Bl Publications, 1974.
- A.C. Noorani, Constitutional Questions in India : The President, Parliament and the States, Delhi, Oxford University Press, 2000.
- M. V. Pylee, An Introduction to the constitution of India, New Delhi, 1998.
- Ray, Tension Areas in India's Federal System, Calcutta, The World Press, 1970.
- N.C. Sahni (ed.). Coalition Politics in India, Jullundher. New Academic Publishing Company, 1971.
- J.R. Siwach, Dynamics of Indian Government & Politics New Delhi, Sterting Publishers, 1985.